UNIVERSAL LIBRARY
OU_182406
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H 82 R23A Acc No. GH 1781
रस्तोगी विनोद
आजादी के बाद

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82/R23A Accession No. G.H. 1781

Author रस्तोगी, विनोद।

Title आज़ादी के बाद। 1953

This book should be returned on or before the date last marked below.

आज़ादी के बाद

[एक दृश्य नाटक]

विनोद रस्तोगी

मूल्य १॥)

प्रकाशक
कमला प्रकाशन,
पोस्ट बाक्स ३८५,
७१/४०, स्वरूपनगर,
कानपुर

प्रथम संस्करण—मार्च, १९५३

[सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित]

मुद्रक—
कपूर पब्लिशिंग प्रेस,
मैकराबर्टगंज, कानपुर।

देश के उन अज्ञात वीरों को जिन्होंने स्वतंत्रता के संग्राम में हँसते हँसते अपने प्राणों की बलि दे दी पर जिनका उल्लेख तक इतिहास में नहीं है।

विनोद

तीन बातें

इस नाटक के पात्र काल्पनिक नहीं हैं। आपको अपने जीवन में ऐसे पात्र मिल ही जायेंगे। बस आँखें खोलने भर की देर है।

★ ★ ★

यह नाटक कई स्थानों पर सफलता पूर्वक रंग-मंच पर खेला जा चुका है। कोई भी संस्था इसे बिना मेरी अनुमति के खेल सकती है। पर हाँ, इसकी सूचना प्रकाशक को अवश्य दे देनी चाहिए।

★ ★ ★

नाटक जैसा है आपके सामने है। लिखना मेरा था, उसके गुण-अवगुण परखना आप जैसे पारखियों का काम है। मैंने अपना काम कर दिया, आप अपना काम करें। आपके बहुमूल्य सुझाव का मैं हृदय से स्वागत करूँगा।

विनोद

आजादी के बाद

[एक दृश्य नाटक]

—: पुरुष पात्र :—

सेठ मानिकलाल :— मानिक काटन मिल के मालिक।
रमेश :— सेठजी का ज्येष्ठ पुत्र।
सुरेश :— सेठजी का कनिष्ठ पुत्र।
वजीरचन्द :— एक पुरुषार्थी; शीला का पिता।
मोहनलाल :— सेठजी का मैनेजर।
अजीत :— श्रमिक-नेता; सेठजी के मील का कर्मचारी।
अमरनाथ :— सेठजी के मील का धूर्त कर्मचारी।
पनमोहन :— बना हुआ नेता; सेठ जी का मित्र।
मधुप :— सुरेश का मित्र; कवि।
रामू :— सेठजी का पुराना नौकर।
डाक्टर तथा श्रमिक आदि।

—: स्त्री पात्र :—

नीला :— सेठजी की पुत्री ।

शीला :—वजीरचन्द की पुत्री ।

कान्ता :— अजीत की बहन ।

अन्तःपुर

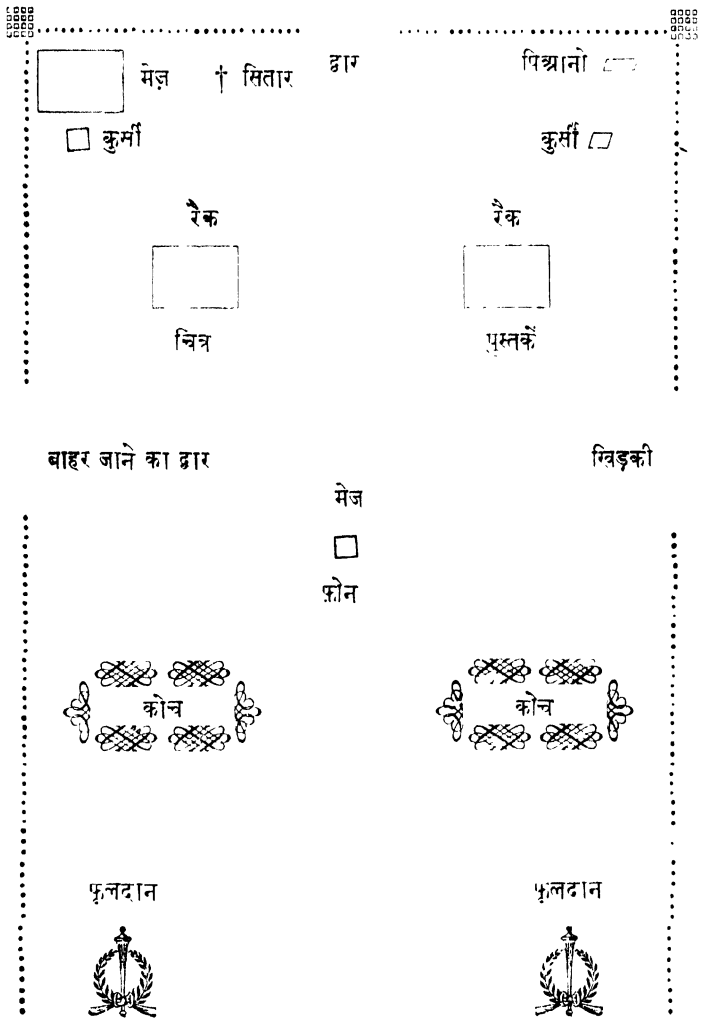
मेज़
सितार
द्वार
पिआनो
कुर्सी
कुर्सी
रैक
रैक
चित्र
पुस्तकें
बाहर जाने का द्वार
खिड़की
मेज
फ़ोन
कोच
कोच
फूलदान
फूलदान

प्रथम अंक

—: स्थान :—

कानपुर की सिविल लाइन्स में स्थित

सेठ मानिकलाल की भव्य कोठी

का

मुख्य ड्राइंग रूम ।

❀

—: समय :—

१५ अगस्त, १९४९ की सन्ध्या ।

[ड्राइङ्ग रूम ४५ फीट लम्बा तथा ३० फीट चौड़ा है। सामने की ओर एक द्वार है जो अन्तःपुर की ओर जाने के लिये है। उस पर एक बहुमूल्य जाली दार पर्दा पड़ा है। बायीं ओर का द्वार बाहर जाने के लिये है उस पर भी एक रेशमी पर्दा पड़ा है। दाहिनी ओर एक खिड़की है जो खुली है। फर्श पर ईरानी कालीन बिछा है। बीच में दो कोच पड़े हैं। वहीं एक छोटी गोल मेज़ पर फोन रक्खा है। दाहिनी ओर कोने में एक पिआनो रक्खा है। उसके समीप ही एक कुर्सी पड़ी है। बाएँ कोने में एक मेज़ और कुर्सी है। मेज़ के पास ही सुन्दर सितार रक्खा है। पियानो के समीप की कुर्सी से कुछ हट कर एक रैक है जिसमें कुछ पुस्तकें रक्खी हैं। दूसरी ओर भी एक रैक है जिस पर गाँधी जी का एक सुन्दर तैल चित्र रक्खा है। आगे के कोनों

में एक एक फूलदान है। सन्ध्या कालीन सूर्य की किरणें खिड़की से होकर चित्र पर पड़ रही हैं। सामने के कोच पर उदास मुद्रा में रमेश बैठा है। उसकी अवस्था २५ वर्ष की है। गौर वर्ण मुख पर घने चिकने काले बाल शोभित हो रहे हैं। खद्दर का चूड़ीदार पैजामा, कुर्ता तथा सदरी पहने है। कमरे में पूर्ण निस्तब्धता है। सहसा वह कोच से उठ कर एक सिगरेट सुलगाता है और खिड़की के पास जाकर कुछ क्षण खड़ा रहता है। फिर वह एक ठण्डी श्वाँस लेकर सिगरेट बाहर फेंक देता है और कोच की ओर बढ़ता है। तभी अन्दर के द्वार का पर्दा हटा कर नीला आती है। वह १६ बसन्त देख चुकी है। सुन्दर तथा आकर्षक है। एक स्वच्छ श्वेत साड़ी पहने है। रमेश को वह उस दशा में देख कर चिन्तित हो उठती है।]

नीला—(रमेश के पास जाकर) आज १५ अगस्त है न दादा!

रमेश—(चौंक कर) हां आज १५ अगस्त है नीला।

नीला—(और समीप जाकर) और आज के दिन ही हमने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त की थी।

रमेश—(गम्भीर स्वर में) हाँ नीला आज के दिन हम स्वतन्त्र हुये थे। स्वतंत्र . स्वतंत्र (पागलों के समान हँसता है)

नीला—(भीत स्वर में) आज आपको हुआ क्या है?

रमेश—हुआ क्या है? विचित्र प्रश्न है, हुआ क्या है?

नीला—(कातरता से) दादा!

रमेश—(तीव्र स्वर में) नीला, तुम क्यों बार बार मेरे हृदय के घावों को कुरेदने की चेष्टा करती हो? तुम से एक बार नहीं सौ बार कह दिया है कि मुझे इस झूठी स्वतंत्रता से तनिक भी प्रसन्नता नहीं।

नीला—(बीच में काट कर) दादा ...!

रमेश—हाँ नीला! मुझे इस झूठी स्वतंत्रता से तनिक भी प्रसन्नता नहीं। यह स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता नहीं, स्वतन्त्रता के वेश में हमारी मृत्यु का चित्र है। नेता कहते हैं कि हमने रक्त की एक बूँद भी बहाये बिना यह स्वतन्त्रता पाई है। उनके शब्दों में यह रक्तहीन क्रांति है—रक्तहीन क्रांति! पर पंजाब की पाँचों नदियाँ हमारे भाई बहनों के रक्त जो लाल

हो गई वह कुछ नहीं, उनके घरों में लगी आग की लपटों से आकाश तक जल उठा वह कुछ नहीं। उनका रक्त जैसे रक्त नहीं, उनका जीवन जैसे जीवन नहीं। (आवेश के कारण काँपने लगता है)

नीला—यह ठीक है दादा ! पर स्वतन्त्रता के लिये लोगों को इससे भी बड़े बलिदान करने पड़े हैं। इतिहास इसका साक्षी है।

रमेश—इतिहास ? (हँसता है) समय की मुंदरी में झूठे पत्थर सा जड़ा हुआ इतिहास...? उसका क्या भरोसा नीला ! (खिड़की के पास जाकर) देखो लोग सड़कों पर प्रसन्नता पूर्वक घूम रहे हैं। बड़े बड़े झण्डे उनके हाथों में हैं। थोड़ी ही देर में घर द्वार, गली-कूचे बिजली के प्रकाश में जगमगाने लगेंगे। पर इस प्रकाश के भी बीच में कुछ लोग ऐसे होंगे नीला जिनके घरों में मिट्टी का एक दीप भी न जल सकेगा। उनका प्रकाश छिन गया है और अब अन्धकार—गहन अन्धकार—ही उनके जीवन का आधार है।

नीला—आपका संकेत कदाचित शरणार्थियों की ओर है।

रमेश—(तीव्रता से) यह शब्द मैं तुम्हारे मुख से फिर नहीं सुनना चाहता नीला ! उन्हें शरणार्थी कहना उनका अपमान करना है। उन बिचारों को कब, किसने, कहाँ शरण दी ? अपना सर्वस्व लुटा कर, अपने घरों को अपनी ही आँखों से जलते हुये देख कर, अपने माता-पिता, भाई बहनों को साम्प्रदायिकता की बेदी पर चढ़ा कर भी जो जीवित रह सकते हैं: बेघरबार घूमते हुये परिश्रम कर सकते है उनको हमें शरणार्थी कहने का क्या अधिकार है ! सोचो तो कि यदि हम पर या किसी अन्य प्रान्त के लोगों पर यही आपत्ति आई होती तो क्या हम या वे लोग इस साहस से उसका सामना कर सकते थे ? नहीं, कभी नहीं। लाखों वृद्ध, युवा और बच्चे सड़कों पर भीख माँगते दिखाई देते। पर क्या तुमने आज तक किसी पंजाबी भाई-बहन को किसी के आगे भीख के लिये झोली फैलाते देखा है ? वे छोटे से छोटे काम करने में संकुचित नहीं होंगे परन्तु किसी के सामने हाथ फैलाना पसंद न करेंगे। वे तो पुरुषार्थी हैं नीला, पुरुषार्थी। वे हमारी श्रद्धा के पात्र हैं। पर हम उन पर श्रद्धा करना तो दूर, अत्याचार ही करते हैं।

नीला—अत्याचार...?

रमेश—अत्याचार नहीं तो और क्या नीला ? वह जो सामने ऊंची कोठी है उसके स्वामी ने उन्हें छोटी छोटी कोठरियाँ तीस तीस रुपये मासिक किराये पर दी हैं—वह भी पगड़ी लेकर ! जानती हो क्यों ? उन बेचारों की बेबसी और असहायावस्था ही इसका कारण है। वे लोग गृह-हीन क्या हुये कि इन सेठ साहूकारों को अपनी जेबें भरने का स्वर्ण अवसर मिल गया !

नीला—(हँसकर) आप कदाचित यह भूलते हैं कि आप भी एक सेठ के ही पुत्र हैं।

रमेश—(गम्भीर स्वर में) इसे भुलाना चाहता हूँ पर भुला नहीं पाता नीला ! सच, मैं इस घर को छोड़ कर कभी का कहीं चला गया होता—वहाँ जहाँ मेरी आवश्यकता होती—पर तुम्हारा स्नेह, तुम्हारी ममता ही मुझे बाँध लेती है। तुम मेरे विचारों से सहमत भले न हो पर उन्हें समझने का प्रयत्न तो करती हो। यही मेरे लिये संतोष की बात है। (एक दीर्घ निश्वास छोड़ता है)

नीला—यह आपने कैसे जान लिया कि मैं आपके विचारों से सहमत नहीं ? मैं तो यूँ ही कभी कभी आपको चिढ़ाने के लिये तर्क करने लगती हूँ।

[दोनों हँसने लगते हैं। उसी समय बाहर के द्वार का पर्दा हटाकर सेठ मानिकलाल आते हैं। उनकी अवस्था ५० वर्ष की है। चूड़ीदार पाजामा तथा शेरवानी पहने हैं। हाथ में सुंदर छड़ी है। आँखों पर सुनहले फ्रेम का चश्मा है और सर पर काली गोल टोपी है। शरीर स्थूल, वर्ण गौर तथा बाल अधपके हैं। उनके साथ उनका मैनेजर मोहनलाल भी है। उसकी वेशभूषा भी वैसी ही है। अवस्था लगभग ४५ वर्ष की है]

सेठजी—(कोच पर बैठते हुये रमेश और नीला से) अरे ! तुम लोग यहीं हो ! प्रकाश देखने नहीं गये ?

नीला—कैसा प्रकाश पिताजी ?

सेठजी—आज १५ अगस्त है न !

नीला—अच्छा ! (स्वर में शरारत का भाव है) अरे ! मैं तो भूल ही गई थी कि आज १५ अगस्त है ।

सेठजी—(हँसते हुये) इस समय कहती है भूल गई थी, और प्रातः समय झंडारोहण के उत्सव में कौन गया था ?

नीला—उसमें तो गई थी पिताजी, पर मैं यह भूल गई थी कि आज नगर में प्रकाश भी होगा । (हँसती है)

सेठजी—और कदाचित इसीलिये कोठी भी अंधकारपूर्ण है । अरे रामू !

[सेठजी तीव्र स्वर में रामू को पुकारते हैं । अंतःपुर से "आया मालिक" कहता हुआ रामू आता है । वह अधेड़ अवस्था का व्यक्ति है । धोती और बंडी पहने है]

सेठजी—(रामू से) कोठी में आज प्रकाश नहीं होगा क्या ?

रामू—क्यों नहीं होगा मालिक ! (जाने का उपक्रम करता है)

रमेश—(गम्भीर स्वर में) ठहरो रामू ! (रामू रुक जाता है) आज कोठी में प्रकाश नहीं होगा ।

रामू—नहीं होगा बाबू !

सेठजी—क्यों नहीं होगा, बाबू के बच्चे ? (स्वर में क्रुद्धता है)

[रामू भय से कभी सेठजी की ओर और कभी रमेश की ओर देखता है । कुछ उत्तर नहीं देता ।]

रमेश—(उसी गम्भीरता से) यदि प्रकाश होगा तो क्यों होगा पिताजी ?

सेठजी—इसलिये कि आज १५ अगस्त है । आज का दिन हमारे इतिहास का स्वर्ण-दिवस है । अब तुम कहो कि यदि प्रकाश नहीं होगा तो क्यों नहीं होगा ?

रमेश—इसी लिये कि आज १५ अगस्त है । आज का दिन हमारे इतिहास का रक्त-दिवस है । खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर लेने के आनन्द में हमारी एक आँख जहाँ हँसती है वहीं दूसरी आँख अपने भाइयों के रक्तपात तथा उनके विनाश पर रोती भी है । प्रकाश का महत्व तब है जब घर-घर, द्वार-द्वार पर दीप जलें । वह प्रकाश भी क्या

कहीं तो सोने के दीपक जलें और कहीं मिट्टी का दीप जलाने के लिये तेल भी न हो।

सेठजी—यह अपने अपने भाग्य की बात है बेटा !

रमेश—मैं भाग्य पर विश्वास नहीं करता पिताजी ! और सच तो यह है कि मुझे अब आपके उस भगवान पर भी विश्वास नहीं रहा जो द्रौपदी की लाज रखने के लिये तो नंगे पैर दौड़ आया था किन्तु असंख्य ललनाओं की लाज तथा सतीत्व को रक्षा करने के लिये जिसके पास अवकाश न था।

सेठजी—यह तुम क्या कह रहे हो रमेश ?

रमेश—मैं सत्य कह रहा हूँ पिताजी। भाग्य और भगवान दोनों मनुष्य की विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों को दबाने तथा उन्हें अपनी दयनीय दशा पर ही संतोष रखने का पाठ सिखाने के लिये आप जैसे धनपतियों की कल्पना की ही सृष्टि हैं।

सेठजी—(तीव्र स्वर में) रमेश.....!

रमेश—क्षमा करें पिताजी। लक्ष्मीपतियों के पास कल्पना कहाँ ? ऐसा कहना मेरी भूल थी। धनपतियों के पापों के साझीदार धर्म के ठेकेदारों की कल्पना की सृष्टि कहना अधिक शुद्ध तथा उचित था।

सेठजी—(क्रोध से तीव्र स्वर में) क्या तुम्हारी आधुनिक शिक्षा तुम्हें नास्तिक बनना ही सिखाती है ?

रमेश—यदि अंध परम्पराओं में विश्वास न करना ही नास्तिकता है तो हम अवश्य नास्तिक हैं पिताजी !

सेठजी—"हम" से तुम्हारा तात्पर्य ?

रमेश—मैं और नीला !

[सेठजी प्रश्न भरी दृष्टि से नीला की ओर देखते हैं]

नीला—(गम्भीरता से) हाँ पिताजी ! मैं और रमेश दादा।

सेठजी—(आवेश में आकर खड़े होते हुये) कुछ भी हो, मैं तुम दोनों का पिता हूँ। मेरे रहते तुम्हारी आशा का कोई मूल्य नहीं। (रामू की ओर मुड़कर) रामू ! कोठी में प्रकाश अवश्य होगा। जाओ !

रमेश—पिताजी ! कोठी में प्रकाश हो सकता है पर.....।

सेठजी—पर क्या... ?

नीला—यदि कोठी में प्रकाश होगा तो मिल-मजदूरों की कोटरियों में भी होगा, मानिकनगर में बसे पुरुषार्थी भाई-बहनों के क्वार्टरों में भी होगा।

सेठजी—अवश्य हो। मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ?

रमेश—पर यह प्रकाश आपकी ओर से होगा। उसका समस्त व्यय आपको देना होगा।

सेठजी—यदि तुम लोग अपना धन इसी प्रकार लुटाने पर तुले हो तो मुझे क्या ? जो कुछ है तुम्हारे लिये, जो कुछ करता हूँ तुम्हारी भलाई के लिये। मुझे यह धन अपने साथ तो ले नहीं जाना है। करो, जो इच्छा हो सो करो। पर इतना ध्यान रखना कि जिस धन को तुम इस प्रकार लुटा रहे हो उसे प्राप्त करने के लिये मैंने भाँति भाँति के कष्ट उठाये हैं।

रमेश—यदि यह ध्यान न होता तो इस धन को इस प्रकार व्यय करने का प्रस्ताव मैं न रखता पिता जी !

[रमेश और नीला हँसते हुये बाहर चले जाते हैं। सेठ जी सर थाम कर फिर कोच पर बैठ जाते हैं। मोहनलाल खड़ा रहता है]

रामू—(डरते हुये) कोठी में प्रकाश होगा सरकार ?

सेठजी—(डाँट कर) हाँ, हाँ !

[रामू भयभीत होकर अन्दर चला जाता है। कमरे में प्रकाश हो जाता है। मोहनलाल मेज के पास की कुर्सी उठाकर सोफे के पास डालता है और उस पर बैठ जाता है। सेठ जी अपनी टोपी उतार कर कोच पर रखते हैं। उनके सर का अगला भाग गञ्जा है।]

सेठ जी—देखा तुमने मोहनलाल ! इसी का नाम कलियुग है।

मोहनलाल—जी...

सेठ जी—क्या है ?

मोहनलाल—जी कुछ नहीं ! मैं कह रहा था इसी का नाम कलियुग है।

सेठजी—(अपने पैर दूसरे कोच पर फैलाते हुये) बम्बई से आज जो नई आज्ञा आई है उसे देखा मोहनलाल ?

मोहनलाल—जी ! उस आज्ञा के कारण अपने कई स्पिन्डिल (spindle) और लूम (loom) खाली पड़े रहेंगे।

सेठ जी—और सहस्त्रों श्रमिकों को व्यर्थ में ही वेतन देना पड़ेगा।

मोहनलाल—जी...

सेठजी—क्योंकि हम उन्हें निकाल भी नहीं सकते। देखा मोहनलाल यह है स्वतंत्रता का फल। अपनी पूँजी लगाओ, मशीनें लाओ, मील चालू करो और चाहे लाभ हो या हानि श्रमिकों को भत्ता देते रहो; चाहे काम हो या न हो, उन्हें वेतन देते रहो !

मोहनलाल—जी ! नाम तो सेठ जी का पर मील यार लोगों का !

[मोहनलाल अपने परिहास पर स्वयं हँसता है। सेठजी उसकी ओर गंभीर दृष्टि से देखते हैं ! उसका मुख फीका पड़ जाता है और वह हँसना बंद कर देता है।]

सेठ जी—(गंभीर स्वर में) यह हँसने का अवसर नहीं है मोहनलाल ! हमें कुछ करना पड़ेगा, कुछ सोचना पड़ेगा।

मोहनलाल—(गम्भीर होकर) जी, कुछ करना अवश्य पड़ेगा।

सेठ जी—कुछ सोचा है तुमने ?

मोहनलाल—जी...! जी, अभी तो कुछ भी नहीं सोचा है।

सेठ जी—तो क्या तुम्हें वेतन केवल 'जी' 'जी' कहने के लिये ही दिया जाता है।

मोहनलाल—जी... जी नहीं।

सेठजी—जी, जी नहीं ! अपनी यह 'जी' 'जी' घर पर ही छोड़ आया करो।

मोहनलाल—जी !

सेठ जी—फिर वही जी ! अमरनाथ को बुलाया है ?

मोहनलाल—जी हाँ, वह आता ही होगा।

[बाहर के द्वार का पर्दा हटा कर अमरनाथ का प्रवेश। वह धोती कुर्ता पहने है। अवस्था लगभग २५ वर्ष की है। उसके मुख से धूर्तता टपकती है। आँखों में क्रूरता के भाव हैं।]

सेठजी—(कोच से पैर हटाते हुये) आओ अमरनाथ ! मैं तुम्हीं

को याद कर रहा था।

अमरनाथ—यह आपकी कृपा है सेठ जी। कहिये कैसे याद किया है ?

[पिआनो के समीप वाली कुर्सी उठाकर कोच के समीप डालता है और उस पर बैठ जाता है]

सेठजी—नियंत्रण सम्बन्धी नई नई आज्ञाओं ने नाक में दम कर रक्खा है अमरनाथ ! कभी कभी तो इच्छा होती है कि मील बंद कर दूँ। पर फिर सोचता हूँ कि मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा किन्तु निर्धन श्रमिक भूखों मर जायेंगे।

अमरनाथ—यह आपकी सहृदयता है सेठजी !

सेठजी—अभी आज ही एक नई आज्ञा आई है जिससे सहस्त्रों श्रमिक बेकार हो जायेंगे।

अमरनाथ—यह तो बुरा हुआ सेठजी !

सेठजी—हाँ ! अब प्रश्न यह है कि निकाला किनको जाये। मुझे इन दिनों कुछ ऐसी सूचनाएँ मिली हैं जिनसे ज्ञात होता है कि अपने मील में भी कुछ लोगों को नेतागीरी का शौक चर्राया है। मैं सोचता हूँ कि क्यों न ऐसे ही लोगों को निकाला जाये जिनसे हमारे सीधे साधे श्रमिकों को भय है !

अमरनाथ—आपका विचार तो ठीक है। पर यह होगा कैसे सेठजी ? आप उन्हें निकाल कैसे सकते हैं ? सरकारी आज्ञायें.....।

सेठजी—(बीच में ही काट कर) इसी लिये तो मैंने तुम्हें बुलाया है अमरनाथ। पहले भी कई बार तुमने मेरी जो जो सेवाएँ की हैं उन्हें मैं भूला नहीं हूँ।

अमरनाथ—जी, यह तो मेरा धर्म था। आप आज्ञा दें।

सेठजी—(धीमे किन्तु गम्भीर स्वर में) मैं चाहता हूँ कि तुम मील में हड़ताल करवा दो। विरोधी दल हड़ताल का अवश्य विरोध करेगा। पर हमें जिस भाँति भी हो इस हड़ताल को सफल बनाना है। उसी को आड़ लेकर हम उन लोगों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकते हैं।

अमरनाथ—मैं आपका आशय समझ गया सेठजी। आप यह

हड़ताल कब से चाहते हैं ?

सेठजी—कल तो मील बंद है, हड़ताल परसों से होना चाहिये।

अमरनाथ—अवश्य होगी सेठजी, पर.....

सेठजी—(खड़े होकर) मैं समझता हूँ। ऐसे कामों में व्यय तो होता ही है।

[अपनी शेरवानी की जेब से सौ सौ रुपये के दस नोट निकाल कर अमरनाथ की ओर बढ़ा देते हैं। अमरनाथ गिनकर उन्हें कुर्ते की जेब में रख लेता है]

सेठजी—कम तो नहीं हैं ?

अमरनाथ—जी नहीं ! अभी इतने से काम चल जायगा। जब कम पड़ेंगे तो और माँग लूँगा। अच्छा अब आज्ञा दीजिये।

[वह उठकर नमस्कार करता है और बाहर चला जाता है। सेठजी के मुख पर मुस्कान खेल जाती है]

सेठजी—(मोहनलाल की ओर मुड़ कर) कुछ समझे तुम ?

मोहनलाल—जी, कुछ भी नहीं !

सेठजी—साधारण सी बात भी तुम्हारी समझ में नहीं आती। न जाने किस गधे ने तुम्हें मैनेजर बना दिया है ?

मोहनलाल—जी आपने.....।

सेठजी—(क्रुद्ध स्वर में) चुप रहो ! 'जी' 'जी' करने के अतिरिक्त तुम्हें और कुछ आता ही नहीं। सुनो ! इस हड़ताल से हमारे दो कार्य सिद्ध होंगे। श्रमिकों के नेता उस अजीत को नेतागीरी का फल मिल जायेगा और सरकार के आगे हम अपनी स्थिति रख सकेंगे।

मोहनलाल—(न समझने के ढंग से) जी, वह कैसे ?

सेठजी—सरकार नियंत्रण लगाये रखने पर तुली है और हमने यह निश्चय किया है कि उसे तुड़वा कर ही दम लेंगे। इधर हड़ताल होगी और उधर केन्द्रीय सरकार को मैं तार दे दूँगा कि मील में सहस्त्रों गाँठ कपड़ा पड़ा है। परमिट होल्डर (Permit Holder) माल उठाते नहीं। इसी लिये श्रमिकों को वेतन देने में असमर्थ हैं फलस्वरूप उन्होंने हड़ताल करदी है।

मोहनलाल—जी, अब समझ रहा हूँ सब कुछ ! और सरकार विवश होकर मील का माल मुक्त कर देगी।

सेठजी—हाँ ! और फिर चाँदी ही चाँदी है।

मोहनलाल—जी, चाँदी क्यों सेठजी, सोना कहिये, सोना।

[दोनों खुलकर हंसते हैं]

सेठजी—(हँसी रोककर) जीवन में आज प्रथम बार तुमने बुद्धिमानी की बात की है मोहनलाल !

मोहनलाल—जी, आप मुझे लज्जित कर रहे हैं। अच्छा अब आज्ञा दीजिये सेठजी.....! बच्चे . ...!

सेठजी—हाँ ! हाँ ! क्यों नहीं ! (शेरवानी की जेब से सौ सौ रुपये के दो नोट निकाल कर मोहनलाल की ओर बढ़ाते हुये) यह बच्चों की मिठाई के लिये हैं। आज १५ अगस्त है न !

मोहनलाल—(नोट लेकर जेब में रखता हुआ) बहुत बहुत धन्यवाद सेठजी !

[मोहनलाल झुककर नमस्कार करता है और फिर बाहर चला जाता है। कमरे में सेठजी अकेले रह जाते हैं]

सेठजी—आज १५ अगस्त है। १५ अगस्त ! हा ! हा !! हा !! १५ अगस्त ! १५ अगस्त !!

[सेठजी पागलों के समान हँसते हैं। बाहर के द्वार से सुरेश प्रवेश करता है। उसके पीछे बगल में एक ट्रंक दबाये वजीरचन्द तथा कंधे पर बिस्तर लादे शीला आती है। सुरेश २२ वर्ष का गोरा, सुन्दर तथा आकर्षक युवक है। लखनऊ विश्व विद्यालय का ग्रेजुयेट होने के कारण आधुनिक विचारों का व्यक्ति है। वह ढीला पैजामा तथा मलमल का स्वच्छ कुर्ता पहने है। वजीरचन्द अधेड़ अवस्था का व्यक्ति है। मुख पर जीवन-संघर्ष में प्राप्त पराजय के चिन्ह हैं। उसके वस्त्र फटे तथा गंदे हैं। शीला की अवस्था १८ वर्ष है। यद्यपि वह फटा सलवार और कुर्ता पहने है तदपि उसका सरल सौंदर्य आकर्षण की सीमा को लाँघ गया है। दोनों अपना सामान फर्श पर रख देते हैं]

सेठजी—(कठोर स्वर में) कौन हैं ये लोग ?

सुरेश—ये बेचारे शरणार्थी हैं पिताजी। लाहौर में सब कुछ रह गया। इनकी पत्नी को हत्यारों ने मार डाला। किसी प्रकार पुत्री के प्राण बचा कर देहली आये। अब तक वहीं थे। पर जब वहाँ भी भर पेट भोजन न मिला तो यहां आये हैं। सड़क पर भटक रहे थे। मैंने सोचा.....

सेठजी—(बीच में ही) क्या सोचा तुमने ? यही न कि इन्हें घर ले चलूँ। धर्मशाला समझ रक्खा है घरको।

सुरेश—(मन्द स्वर में) आपतो क्रुद्ध होते हैं पिताजी ! देखिये, आपने मानिक-नगर में शरणार्थियों को जो शरण दी है उससे नगर क्या प्रान्त भर में आपका नाम होरहा है। वहाँ कोई क्वार्टर रिक्त नहीं था इसी लिये यहाँ ले आया। अब आपही सोचिये कि यदि ये यहाँ से निराश होकर लौटते हैं तो आपके नाम को, आपकी प्रसिद्धि को कितना धक्का पहुँचेगा।

[सेठजी मौन रहते हैं। कुछ उत्तर नहीं देते। उनके मौन से सुरेश और अधिक उत्साहित हो जाता है।]

सुरेश—आपका नाम—सेठ मानिकलाल का नाम, मानिक-नगर के निर्माता तथा मानिक-मिल के स्वामी का नाम, रमेश दादा, मेरे और नीला के पिता का नाम.....।

सेठजी—(हँसकर) बस बस ! तुम तो भाषण देने लगे।

सुरेश—नीला अभी अकेली रहती है पिताजी। उसे एक सहेली भी मिल जायगी। इन्हें अन्दर ले जाऊँ ?

सेठजी—अभी शीघ्रता क्या है ? रामू, ओ रामू ! (सेठजी रामू को आवाज देते हैं। अन्दर से रामू आता है)।

सेठजी—(रामू से) यह सामान अन्दर ले जाओ। नीला के समीप वाला कमरा ठीक कर देना। वहीं सामान रख देना। और हाँ, महराज से कह देना कि आज से दो व्यक्तिओं का भोजन और बना करेगा।

रामू—जी, बहुत अच्छा !

[रामू सामान उठाकर अन्दर चला जाता है।]

सेठजी—(वज़ीर चन्द और शोला से) अरे ! बैठिये न ! आप तो

तब से खड़े ही हैं।

[दोनों दूसरे सोफे पर बैठ जाते हैं। सुरेश सेठजी के समीप बैठ जाता है।]

वजीरचन्द—(कृतज्ञता पूर्ण स्वर में) मैं आपको कैसे धन्यवाद दूँ सेठजी ? मुझे उचित शब्द नहीं मिलते। बस यह समझ लीजिये कि आप ने दो डूबते हुये प्राणियों का हाथ पकड़ लिया है।

[उसका स्वर गीला हो जाता है। शीला भी भरी आंखों से सुरेश की ओर देखती है। आंखों ही आंखों में जैसे वह भी उसे धन्यवाद दे रही है।]

सेठजी—आप कैसी बातें करते हैं भाई जी ? यह तो मेरा धर्म है। और फिर सयानी लड़की साथ लेकर कहां भटकते.....! शिव ! शिव !!

[क्षण भर के लिये सब मौन रहते हैं। सहसा सुरेश निस्तब्धता भंग करता है।]

सुरेश—रमेश दादा और नीला कहां है पिताजी ?

सेठजी—श्रमिकों की कोठरियों में दीप जलाने, मानिक-नगर के क्वार्टरों में मिठाई बांटने गये हैं दोनों !

सुरेश—(वजीरचन्द को सम्बोधित करके पर कनखियों से शीला की ओर देखकर) देखा आपने ? मेरे पिताजी कितने दयालु हैं ! मैंने आप से कहा था न कि पिताजी तो बस अवतार हैं अवतार !

[सेठजी और वजीरचन्द हँसते हैं शीला भी मुस्कराती है। उसकी दृष्टि फर्श पर लगी है। तभी रामू अन्दर के द्वार का पर्दा हटाकर आता है।]

रामू—कमरा ठीक कर दिया सरकार !

सेठजी—अच्छा; इन्हें वहां पहुँचा दो !

[रामू वजीरचन्द और शीला को लेकर अन्दर जाता है। सुरेश भी उठने की चेष्टा करता है किन्तु फिर वहीं बैठा रहता है। बाहर के द्वार का पर्दा हटा कर मनमोहन आता है। वह अधेड़ अवस्था का व्यक्ति है। खद्दर की स्वच्छ धोती तथा कुर्त्ता पहने है। पैर में चप्पल तथा श्वेत गांधी-टोपी है। आंखों में सुनहली कमानी का चश्मा लगा है।]

सेठजी—(उठकर) पधारिये मनमोहन जी, पधारिये !

[मनमोहन हँसता हुआ सेठजी के समीप ही कोचपर बैठ जाता है। सेठजी भी बैठते हैं। सुरेश को अन्दर जाने का बहाना मिल जाता है। वह उठ कर अन्दर चला जाता है।]

मनमोहन—आज १५ अगस्त है सेठजी ! दिन भर साँस लेने का अवकाश नहीं मिला। इस समय फिर एक सभा में जाना है। सोचा आपको भी साथ लेता चलूँ !

सेठजी—आपकी इस कृपा के लिये धन्यवाद ? कहां है सभा ?

मनमोहन—सभा क्या, सेठ हीरालाल के यहां उत्सव है। निमंत्रण-पत्र तो आपके यहां भी आया होगा ?

सेठजी—आया तो है पर.....

मनमोहन—पर क्या.....? क्या जाने का विचार नहीं है ?

सेठजी—हाँ। जब आप आ गये हैं तो साथ चला चलूँगा ! हाँ मनमोहन जी, मेरे उस कार्य का क्या हुआ ?

मनमोहन—ओह ! वह निर्यात सम्बन्धी कार्य ! मैं तो भूल ही गया था सेठजी !

सेठजी—भूलना स्वाभाविक भी है भाई ! आप ठहरे बड़े नेता और मैं ठहरा.....।

मनमोहन—(बीच में ही) नहीं ऐसी बात तो नहीं है सेठजी ! मैं तो आपका सेवक हूँ। अरे हाँ ! आज रामलाल फिर आया था मेरे यहाँ !

सेठजी—कौन, वह आपका भान्जा ? अच्छा ! बड़ा चतुर और होनहार युवक है। मेरा विचार था यदि निर्यात के लिए आज्ञा पत्र मिल जाता तो उसी में रामलाल को भी कुछ साझा दे देता। यदि ५०० गाँठों का भी परमिट मिल गया तो एक लाख रुपया कहीं गया नहीं है और यदि रामलाल को चार आने का भी साझीदार बना लिया तो उसके भाग में पचीस हजार रुपये तो आही जायेंगे !

मनमोहन—आप परमिट के लिये निश्चिन्त रहें सेठजी ! मैं मित्रा साहब से कह दूँगा। वे मेरी बात नहीं टालेंगे। मुझे विश्वास है।

सेठजी—(हँसकर) यदि आजकल भी आपकी बात नहीं मानेंगे तो कब मानेंगे ? वास्तविक शासन तो आप लोगों के ही हाथ में है। ठीक भी है ! त्याग भी आपने ही किया था, कष्ट भी आप लोगों ने ही उठाये थे, यंत्रणायें भी आपने ही सही थीं, जेल भी आप लोग ही गये थे।

मनमोहन—वह तो मेरा कर्त्तव्य था। शेष सब आप लोगों की ही कृपा है। मैं किस योग्य हूँ ? हाँ तो मैं रामलाल को यह शुभ समाचार सुना दूँ ?

सेठजी—अवश्य ! और क्या मैं अपने मैनेजर से कह दूँ कि ५०० गाँठें निर्यात के लिये तैयार रक्खें ?

मनमोहन—अवश्य ! अच्छा चलिये अब चलें।

सेठजी—अभी चलता हूँ। अरे सुरेश ! ओ सुरेश ! [अन्दर से "आया पिताजी" कहता हुआ सुरेश आता है।]

सेठजी—मैं सेठ हीरालाल के यहाँ जा रहा हूँ। तुम यहीं रहना !

सुरेश—जी बहुत अच्छा !

[मनमोहन और सेठजी बाहर चले जाते हैं। कमरे में सुरेश ही रह जाता है। वह कुछ क्षण तक इधर उधर टहलता रहता है फिर पियानो के समीप कुर्सी रखकर बैठ जाता है। उसकी चपल उँगलियाँ पियानो पर नृत्य करने लगती हैं। एक मदिर स्वर लहरी गूँज उठती है। सुरेश गाता है।]

आज क्यों उल्लास मन में ?
क्यों मचलती हैं भुजायें क्यों मचलते प्राण मेरे ?
और किसको भेंटने को चल पड़े अरमान मेरे ?
नृत्य सा मन-मोर करता—
किस अपरिचित का सँदेशा सुन लिया है आज घन में ? आज० ?
आज जीवन-वाटिका में हँस पड़ीं इच्छा तितलियाँ।
खिल पड़ीं कलियाँ हृदय की घिर गईं सुख की बदलियाँ ॥
प्राण-कोकिल सजगसा है—
आज किसके आगमन की बात है मेरे भवन में ?

आज क्यों उल्लास मन में ?
आज क्यों उल्लास मन में ?

[बाहर के द्वार से मधुप आता है। वह २० वर्ष का युवक है। रँग गोरा है तथा बड़े बड़े बाल हैं जो ऊपर की ओर सँभाले गये है। वह धोती कुर्ता पहने है। द्वार के समीप ही रुक कर वह तालियाँ बजाता है। सुरेश मुड़कर देखता है। मधुप को देखकर प्रसन्नता से उसका मुख खिल पड़ता है।]

सुरेश—अरे तुम हो मधुप ? कहो, कैसे हो ?

मधुप—अच्छा हूँ। पर तुमतो बताओ कि तुम्हारी इस प्रसन्नता का कारण क्या है ? क्या कोई नई.....।

सुरेश—(बीच में ही धीमे स्वर में) ऐसे नहीं ! पहले बैठ जाओ !

[दोनों सोफे पर बैठ जाते हैं]

सुरेश—हाँ, अब कहो क्या कह रहे थे ?

मधुप—यही कह रहा था कि क्या कोई नई.....

सुरेश—(टोक कर) हाँ यार ! एक नई चिड़िया फाँसी है।

मधुप—बधाई ! पर यह तो बताओ कि कहाँ की है, कितने पर हैं, कैसी उड़ान है !

सुरेश—पंजाब की है, १७–१८ पर हैं, ऊँची उड़ान है ! बस...!

मधुप—नहीं ! अभी बस कैसे ? मैं ठहरा कवि; मुझे विस्तार में बताओ।

सुरेश—अच्छा सुनो ! आँखों में खंजन की चंचलता, मृगी का भोलापन, बिजली की चमक और कृपाण की धार; बालों में काली घटाओं का रंग और नागिन की लहर; गर्दन जैसे कपोत की, कमर जैसे सिंहनी की, बाहें जैसे मृणाल और चरण जैसे कमल; रंग गोरा, गाल गुलाबी, अंग-अंग में अल्हड़ता और गति-गति में मादकता ! समझे.....?

मधुप—(हँस कर) समझने वाले की मृत्यु है मित्र ! (एक ठंडी निश्वास छोड़ कर हृदय पर हाथ रखता है। कुछ क्षण तक उसी मुद्रा में रहता है। फिर कहता है।) अत्यन्त भाग्य शाली हो तुम कि सदैव

नई चिड़िया पाजाते हो। एक मैं हूँ कि वर्षों से जाल फैलाये बैठा हूँ पर एक भी नहीं फँसती।

सुरेश—मुझमें और तुममें एक अन्तर है मधुप! तुम चिड़ियों को पकड़ने के लिये उनके पीछे भागते हो इसी लिये वे फुर्र से उड़ जाती हैं और तुम्हारे हाथ नहीं आती। मैं उनके पीछे नहीं जाता, दूर बैठा रहता हूँ। वे स्वयं आकर फँस जाती हैं। आज भी ऐसा ही हुआ। माल रोड पर घूम रहा था। वहीं मिल गई और मैं ले आया उसे घर!

मधुप—(आश्चर्य से) घर? कहाँ है?

सुरेश—(मुख पर उँगली रखकर) हुश! धीरे से बोलो! अन्दर है। उसके पिता भी हैं। अब वे यहीं रहेंगे!

मधुप—अच्छा यह बात है.....! पर रमेश दादा से सावधान रहना। कहीं ऐसा न हो कि तुम ताकते ही रहो और वे हाथ साफ कर दें।

सुरेश—मुझे उनसे कोई भय नहीं है। उन्हें इतना कहाँ अवकाश कि वे प्रेम-प्रपंच में पड़ सकें। वे तो महात्मा हैं, महात्मा! इसी लिये तो कहता हूँ कि मुझे उनसे कोई भय नहीं!

[बाहर से नीला और रमेश आते हैं। दोनों प्रसन्न मुद्रा में हैं।]

नीला—किससे कोई भय नहीं है सुरेश भैय्या?

सुरेश—यूँ ही आज जरा कुछ लड़कों से झगड़ा हो गया था। उन्हीं के विषय में कह रहा था।

[रमेश और नीला कोचपर बैठ जाते हैं]

रमेश—लड़ाई झगड़े में क्या रक्खा है सुरेश?

सुरेश—वे लोग गांधी जी को भला बुरा कह रहे थे दादा! मुझे क्रोध आगया। बस हो गई मारपीट। पूछ लीजिये मधुप से।

मधुप—यह ठीक कह रहे हैं भाई साहब। गांधी जी का अपमान हम लोग कैसे सह सकते हैं।

रमेश—(गम्भीर स्वर में) गांधी जी मान-अपमान से बहुत ऊँचे हैं मधुप। यह हमारा सौभाग्य है कि उन्होंने हमारे देश में जन्म लेकर हमें सत्य और प्रेम का मार्ग दिखाया, अहिंसा की ज्योति जलाई और

हमें परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया। किन्तु.....?

मधुप—किन्तु..... ?

रमेश—किन्तु यह उनका दुर्भाग्य ही था जो उन्होंने एक ऐसे पतित देश में जन्म लिया जहां के वासी उनके महत्व को न समझ पाये और अहिंसा के पुजारी को हिंसा की ज्वाला में जलना पड़ा (उसका स्वर आद्र हो उठता है। सब मौन रहते हैं।) पर दीप बुझने पर भी उसका प्रकाश युग युग तक हमें मार्ग दिखाता रहेगा।

[श्रद्धा भाव से वह गांधी जी के चित्र को नमस्कार करता है।]

नीला—(गम्भीर वाणी से) आप ठीक कहते हैं दादा! संसार के सम्मुख अब हम अपना मुख ऊँचा नहीं कर सकते, अब हम यह नहीं कह सकते कि हमने किसी सुकरात को विष नहीं दिया, किसी ईसा को फांसी नहीं दी, किसी मंसूर को सूली पर नहीं लटकाया।

[नीला का कँठ रुँध जाता है। अन्दर से वजीर चन्द और शीला आते हैं। वे स्वच्छ वस्त्र पहने हैं। मुखों पर प्रसन्नता के चिन्ह भी हैं। नीला और रमेश उन्हें आश्चर्य से देखते हैं। सब खड़े हो जाते हैं।]

सुरेश—इन्हें देखकर आप आश्चर्य में न पड़ें दादा। मैं आप लोगों का परिचय कराये देता हूँ। यह मेरे दादा हैं, यह मेरी छोटी पर अत्यन्त खोटी बहन नीला है, यह मेरे मित्र मधुप हैं; आप कवि हैं! और यह हैं बाबू वजीरचन्द! यह उनकी पुत्री शीला जी हैं।

[हाथ जोड़ कर सब एक दूसरे को नमस्कार करते हैं।]

रमेश—खड़े क्यों हैं? बैठिये न!

[सब बैठ जाते हैं। एक कोच पर नीला और शीला बैठती हैं, दूसरी पर वजीर चन्द तथा रमेश। सुरेश और मधुप कुर्सियों पर बैठते हैं।]

सुरेश—समय का फेर विचित्र है दादा! कल तक बाबू वजीरचन्द लाहौर के प्रतिष्ठित व्यापारी थे पर आज.....आज केवल एक शरणार्थी हैं।

रमेश—(तीव्रस्वर में) सुरेश! तुम बार बार मेरे सामने उस शब्द का क्यों प्रयोग करते हो जिसे मैं सुन नहीं सकता। पुरुषार्थी कहने में

क्या तुम्हें लाज आती है.....?

सुरेश—(धीमे स्वर में) क्षमा कीजिये दादा ! मुझसे भूल हो गई। बाबू वजीरचन्द अब अपने अतिथि हैं।

[रमेश गंभीर दृष्टि से पहले तो वजीरचन्द की ओर देखता है और फिर शीला की ओर। वजीर चन्द की दृष्टि फर्श पर बिछे कालीन पर जमी है। शीला की आंखें आद्र हैं।]

शीला—(आद्र कंठ से) मैं आपकी सहृदयता तथा उच्च विचारों को श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ। इस दया के लिए हम आपके आभारी हैं। परन्तु सत्य बात को भुलाया भी तो नहीं जा सकता। आज तो हम पुरुषार्थीन होकर केवल शरणार्थी ही हैं और आप.....आपके पिताजी है हमारे शरण दाता।

रमेश—(कुछ क्षण तक शीला की ओर देखकर) यदि आप इस भावना को अपने हृदय से निकाल सकने में असमर्थ हैं तो.....तो मुझे भय है कि.....कि आपको कोई अन्य स्थान खोजना पड़ेगा। और... और यदि आप इसे अपना ही घर समझकर रहना चाहें तो यह घर–द्वार सब आपका है।

वजीरचन्द—मैं आपका आशय समझा नहीं रमेश बाबू।

रमेश—(उसी स्वर में) मेरा आशय स्पष्ट है। शीला नीला की सहेली की भाँति यहाँ रहे और आप.....आप पिताजी के मित्र की भाँति। शरणार्थी और शरण दाता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

वजीरचन्द—मैं आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ ? सच रमेश बाबू। आज मुझे यह विदित हो गया कि संसार से मनुष्यता का लोप अभी नहीं हुआ है। वैसे उस रक्किम १५ अगस्त के बाद जो शारीरिक तथा मानसिक यंत्रणायें हमने सही हैं उनके स्मरण मात्र से ही शरीर काँप जाता है। धन–सम्पति लुटेरों ने लूट ली, मुझे दुख नहीं हुआ, शीला की माँ को हत्यारों ने इन्हीं आँखों के सामने ही मृत्यु के घाट उतार दिया, मैं नहीं रोया; पर.....पर यहाँ आकर जब मैंने अपने ही भाइयों की शीला के प्रति कुचेष्टायें देखीं तो मेरी आंखों में शोणित के आँसू आ गये !—हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया।

[वज़ीरचन्द का गला भर आता है। शीला उठ कर उसके पीछे खड़ी हो जाती है और उसकी पीठ पर धीरे धीरे हाथ फेरती है। रमेश उठ कर नीला के पास बैठ जाता है। शीला अपने पिता के समीप बैठ जाती है।]

रमेश—(स्वर में गंभीरता है) मुझ से कुछ छिपा नहीं है महाशय जी ! इन्हीं सब बातों को तो देख कर मेरा हृदय इस अन्धे समाज और इसके झूठे ठेकेदारों के प्रति विद्रोही हो उठा है। एक भयंकर आग मेरे अन्तस्तल में सुलग रही है जो न जाने कब शान्त होगी। आप हताश न हों। अब आप निरापद हैं। शीला का मान हमारा मान और उसका अपमान हमारा अपमान है। आज से मेरी एक नहीं दो बहनें हैं—नीला और शीला।

[शीला अश्रु पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखती है। नेपथ्य से करुण संगीत-ध्वनि उठती है। वज़ीरचन्द शीला को हृदय से लगा लेता है। शीला की सिसकियाँ बँध जाती हैं। नीला की आँखों में भी आँसू है। सुरेश और मधुप का मुख फीका पड़ जाता है। वे एक दूसरे की ओर विचित्र दृष्टि से देखते हैं।]

सुरेश—(बात बदलने के आशय से कुछ क्षण पश्चात्) आप श्रमिकों की बस्ती में हो आये दादा !

रमेश—हाँ। जानना चाहते हो, वहाँ क्या देखा ? उन बिचारों को यह ज्ञात भी नहीं कि आज १५ अगस्त है। नेता लोग भाषण दे दे कर उन्हें बता रहे थे कि आज १५ अगस्त है इस लिये उन्हें प्रकाश करना चाहिये, उत्सव मनाना चाहिये और वे निर्धन तथा बेबस लोग एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे मानों आँखों ही आँखों में कह रहे हों कि जब भर पेट खाने को भोजन नहीं, शरीर ढँकने को वस्त्र नहीं तो दीप कहाँ से जलायें, उत्सव कैसे मनायें !

नीला—यह हमारी स्वतंत्रता का कैसा जीता जागता व्यंगात्मक चित्र है कि जिन उपेक्षित तथा प्रताड़ितों को इस स्वतंत्रता से लाभ होना चाहिये उन्हें यह विदित ही नहीं कि आज १५ अगस्त का पुन्य पर्व है और यदि गणना की जाये तो कदाचित देहात के कोनों में

आप को ऐसे भी लोगों का अभाव नहीं मिलेगा जिन्हें यह ज्ञात ही नहीं है कि हम स्वतंत्र होगये हैं।

वज़ीरचन्द—(निश्वास छोड़ कर) यही तो खेद का विषय है।

रमेश—(खड़े हो कर गंभीर स्वर में) और सुनियेगा हमारी इस स्वतंत्रता की कहानी। नगर में आज प्रकाश हुआ। बड़ों ने बड़े और छोटों ने छोटे दीप जलाये। एक कोठरी में अँधकार था। पुलिस वाले उसके निवासी एक नर-कंकाल को पकड़ लेगये। उसका अपराध यह था कि उसने प्रकाश नहीं किया था, उत्सव नहीं मनाया था (क्षण भर रुक कर इधर उधर टहलता है। कमरे में पूर्ण निस्तब्धता रहती है। सहभातीव्र स्वर में वह फिर कहता है) किन्तु पुलिस वालों को क्या मालूम कि यदि उस के पास दीप में तेल डालने के लिये दो पैसे ही होते तो वह उन पैसों से अपनी उस बच्ची के प्राण बचा लेता जो भूख से तड़प तड़प कर मर गई और जिस के मृत शरीर को वह उस समय भी अपने सीने से लगाये लेटा था।

[नीचा और शीला फूट फूट कर रोने लगती हैं। वज़ीरचन्द, सुरेश और मधुप अपने आँसू छिपाने का असफल प्रयास करते हैं। रमेश खिड़की के समीप जाकर खड़ा हो जाता है। कुछ क्षण तक कमरे में केवल सिसकियों का स्वर ही सुनाई देता है। नेपथ्य से करुण संगीत की धीमी ध्वनि वातावरण को और भी अधिक करुण करती रहती है।]

वज़ीरचन्द—(रुद्धकंठ से) बेटा फिर.....?

रमेश—(मुड़कर आगे बढ़ते हुये) फिर.....? उस लड़की को गंगा जी में बहाकर जब मैं थाने गया और पुलिस वालों को सब बातें बताईं तब भी उन्होंने उसे नहीं छोड़ा। वे बदले में चाँदी के टुकड़े चाहते थे।

मधुप—घूस चाहते थे ?

रमेश—(व्यंग से) घूस.....? वह तो उनका जन्म सिद्ध अधिकार है। (मौन होकर वह फिर खिड़की के समीप जाता है। क्षण भर वहाँ रुक कर फिर लौटते हुये) और सुनो। लौटते समय सेठ हीरालाल की

कोठी के सामने से निकला। असंख्य व्यक्तियों का भोजन था। कोठी विद्युत-प्रकाश में इन्द्र-भवन सी जगमगा रही थी। पर...पर कोठी के बाहर ही एक अंधकारमय कोने में कुत्तों की भाँति जूठन की आशा लगाये बैठे थे हमारे वे भाई जिन्हें हम भिखारी कहते हैं। १५ अगस्त हो या २५, प्रत्येक दिन उनके लिये १५ अगस्त है यदि उन्हें भर पेट खाने को जूठन ही मिल जाये।

वजीरचन्द—तुम लोगों की भाँति तो मेरी सूझ-बूझ है नहीं बेटा, पर हाँ इतना मैं अवश्य कहूँगा कि हम प्रति दिन निर्धनता और भूख के चंगुल में फँसते जा रहे हैं। परमात्मा जाने यह हमारे पूर्व जन्म के पापों का फल है अथवा इस नव प्राप्त स्वतंत्रता का।

रमेश—(गंभीरता से) स्वतंत्रता...? कहने को तो हम स्वतंत्र हैं, पर क्या यही सच्ची स्वतन्त्रता है? हमें अभी स्वतंत्र होना है उन पशुओं से जो मनुष्य के रूप में रह कर देश तथा राज्य के साथ विश्वासघात करते हैं, हमें स्वतंत्र होना है भूख की ज्वाला से, निर्धनता के शाप से, बेकारी के पाश से, स्वयं अपनी दुर्बलताओं से! और वह होगी हमारी सच्ची स्वतंत्रता।

नीला—आप यह तो बताना भूल ही गये दादा कि सेठ चमनलाल के द्वार पर अनेक लोगों की भीड़ थी। निर्धनों को धोतियाँ बांटी जारही थीं। सैकड़ों भिखारी धोती की आशा में खड़े थे। पर धोतियाँ मिल रही थीं किन्हें? बगल में एक एक जोड़ा दबाये चले जा रहे थे स्वयं सेठ जी कर्मचारी तथा पुलिस चौकी के सिपाही।

रमेश—और कल समाचार पत्रों में मोटे मोटे अक्षरों में पढ़ने को मिलेगी सेठ जी की दानवीरता तथा उदारता की गाथा।

[रमेश के मुख पर व्यंगभरी मुस्कान खेल जाती है। उसे हँसता देख कर सब हँसते हैं। कमरे से विषाद तथा गंभीरता का वातावरण धीरे धीरे लुप्त होने लगता है। अन्दर से रामू आता है।]

रामू—भोजन तैयार है।

रमेश—सुरेश! तुम जाओ और अपने साथ इनलोगों को भी ले जाओ। मैं भोजन नहीं करूँगा।

नीला—मेरी भी इच्छा नहीं है।

शीला—भूखतो मुझे भी नहीं है। आते आते ही तो जलपान किया था। पिताजी आप जायें।

वजीरचन्द—आज मैं भी नहीं खाऊँगा बेटी। संसार के समस्त भूखों की सहानुभूति तथा धनपतियों के पापों के विरोध में आज हम भूख हड़ताल करेंगे।

[सब हँसते हैं।]

मधुप—(उठ कर) मुझे अब आज्ञा दीजिये।

रमेश—क्यों मधुप, तुमने आज के पर्व पर कोई कविता नहीं लिखी ?

मधुप—(हँसकर) लिखीं तो दस दस हैं भाई साहब पर ये सम्पादक छापें तब तो। उन्हें तो अपने मित्रों की रचनायें प्रकाशित करने से ही अवकाश नहीं मिलता।

[सब हँसते हैं। मधुप द्वार की ओर बढ़ता है।]

सुरेश—रुको, मैं भी चलता हूँ मधुप।

[दोनों बाहर चले जाते हैं।]

वजीरचन्द—यदि कहो तो थोड़ी देर के लिये मैं भी बाहर हो आऊँ। अन्तर के अन्धकार से जी घबरा गया है। सोचता हूँ, बाहर के प्रकाश से ही मन बहला आऊँ।

रमेश—हाँ, हाँ ! अवश्य जाइये।

वजीरचन्द—(शीला से) चलती हो बेटी ?

शीला—आप जायें पिताजी ! मेरी इच्छा नहीं है।

[वजीरचन्द बाहर जाता है। तभी फोन की घंटी बज उठती है। रमेश फोन उठा लेता है।]

रमेश—(फोन पर) हाँ.....! हाँ.....! ठीक है। तुम जो कुछ कर रहे हो उचित है। हाँ ... ! क्या कहा.....? नहीं, नहीं। मैं अभी आरहा हूँ।

[रमेश फोन रख देता है।]

रमेश—(नीला से) मैं बाहर जारहा हूँ नीला !

नीला—मैं जानती हूँ आप कहाँ जारहे हैं दादा।

रमेश—पगली ! अच्छा बताओ कहाँ जारहा हूँ मैं !

नीला—शीला के सामने ही कह दूँ ?

[रमेश शीला की ओर देखता है। शीला के मुख पर सरल मुस्कान है]

रमेश—मेरे पास गोपनीय कुछ भी नहीं है नीला। बताओ मैं कहाँ जारहा हूँ।

नीला—कान्ता के यहाँ।

[नीला हँसती है। रमेश का मुख लाल हो जाता है।]

रमेश—झूठ ! मैं जा रहा हूँ अजीत के यहाँ।

[अजीत का नाम सुन कर नीला लज्जित हो जाती है। रमेश हँसता हुआ बाहर चला जाता है।]

शीला—यह कान्ता और अजीत कौन हैं बहन ?

नीला—अजीत इस प्रान्त के प्रमुख श्रमिक नेता हैं। हमारे मील में ही काम करते हैं। कान्ता उनकी बहन है।

शीला—अच्छा ! पर नेता भी काम करते हैं यह तो मैंने आज ही सुना।

नीला—हाँ ! उनका कहना है कि जो स्वयं श्रमिक नहीं वह श्रमिकों की विपदायें नहीं जान सकता और जिसने उन विपदाओं को स्वयं नहीं झेला वह श्रमिकों का सच्चा नेता नहीं।

शीला—विचार तो बहुत ऊँचे हैं। ठीक भी है। सुन्दर सुन्दर बंगलों में रहने वाले, मोटरों में घूमने वाले और बड़ी बड़ी सभाओं में भाषण देने वाले लोग श्रमिकों का प्रतिनिधित्व कैसे करते हैं मेरी समझ में नहीं आता।

नीला—जो कुछ भी हो पर बड़ी बड़ी सभाओं में भारतीय श्रमिकों के प्रतिनिधि बनकर ऐसे ही लोग विदेशों तक जाते हैं।

शीला—यही तो अन्धेर है। अच्छा, यह तो कहो कि कान्ता के नाम से रमेश दादा चौंके क्यों ? क्या कुछ.....?

नीला—(हँसकर) कुछ नहीं, बहुत कुछ। समझीं। अत्यन्त सुशील

तथा सुन्दर लड़की है वह। श्रमिकों की स्त्रियों को लिखना पढ़ना सिखाती है, बुनना काढ़ना बताती है।

शीला—और अजीत के नाम से तुम क्यों लजा गईं थीं बहन ? सच कहना, क्या कुछ.....?

नीला—(लजाकर) बहुत शैतान हो तुम शीला.....

शीला—अच्छा यही सही ! पर यह तो बताओ कि कहाँ तक पहुँच गई हो ?

नीला—(गंभीरता से) अभी तो लक्ष्य का भी पता नहीं है। बस एकाकी पथ पर चली जा रही हूँ।

शीला—तो तुम्हारा प्रेम अभी एकाँगी ही है ?

नीला—सच्चा प्रेम सदैव एकाँगी होता है शीला !

शीला—पर ऐसे प्रेम से लाभ ?

नीला—प्रेम हानि-लाभ नहीं देखता। वह लेना नहीं, देना जानता है। त्याग प्रेमकी कसौटी और सहनशीलता उसकी आत्मा है।

शीला—तो क्या वे अभी जानते भी नहीं कि तुम उनसे प्यार करती हो और उनके दर्शनों के लिए व्याकुल रहती हो ?

नीला—कह नहीं सकती। मैंने अपना प्रेम प्रकट करने की कभी चेष्टा ही नहीं की।

शीला—क्यों.....?

नीला—प्रकट करने के क्षण से ही प्रेम प्रेम न रहकर वासना में बदल जाता है। इसके अतिरिक्त उनके सम्मुख बड़ी बड़ी समस्यायें हैं। उनका जीवन संघर्ष का जीवन है। मैं यह नहीं चाहती कि मेरे कारण उनके हृदय में दुर्बलता आये और वे अपने कर्त्तव्य से विचलित होने का लोभ संवरण न कर सकें।

शीला—मैं तुम्हारे विचारों से सहमत हूँ बहन। पर नित्य उनके दर्शन तो हो जाते होंगे।

नीला—ऐसे मेरे भाग्य कहाँ। कभी कभी आ जाते हैं। वह भी अधिक समय के लिये नहीं। आँधी की तरह आते और पानी की तरह चले जाते हैं।

[बाहर के द्वार का पर्दा हटाकर कान्ता आती है। वह श्वेत वस्त्र पहने है। युवा है। मुख पर आकर्षण है। रंग अधिक गौर नहीं है फिर भी उसे सुन्दर कहा जा सकता है]

कान्ता—कौन आँधी की तरह आता और पानी की तरह चला जाता है नीला बहन ?

नीला—आओ बैठो कान्ता। (कान्ता बैठ जाती है।) मैं अपने विचारों के विषय में कह रही थी। वे मस्तिष्क में आँधी की भाँति आते और पानी की भाँति चले जाते हैं। पकड़ना तो दूर मैं उन्हें छू भी नहीं पाती।

कान्ता—तुम तो कविता करने लगीं बहन ! दादा तो यहाँ नहीं आये थे ?

नीला—नहीं तो ! क्यों ?

कान्ता—प्रातः काल से निकले हैं घर से। अभी तक लौटे ही नहीं। इसी लिये चिन्ता हुई। सोचा, कदाचित यहाँ हों। देखने चली आई। (शीला की ओर देखते हुये) आप कौन हैं ?

नीला—यह मेरी सहेली शीला हैं। आज ही बाहर से आई हैं। अब यहीं रहेंगी। (शीला से) और यह कान्ता हैं जिन के विषय में मैं तुम्हें अभी अभी बता चुकी हूँ।

कान्ता—(हँस कर) मेरी बुराई कर रही थीं क्या ?

नीला—हाँ। यही कह रही थी कि कान्ता चोर है।

कान्ता—(आश्चर्य से) चोर ?

नीला—हाँ ! तुमने मुझसे मेरे दादा को चुरा लिया है न !

[शीला और नीला हँसती हैं। कान्ता लजाकर सर नीचा कर लेती है। एक पल बाद संयत होकर कहती है।]

कान्ता—एक चोर किसी भले आदमी को भी चोर बना सकता है यह आज ही जाना। स्वयं तो मुझ से मेरे दादा को छीन लिया है और अब उल्टा मुझी पर रंग जमाती हो।

नीला—तुम आदमी बन गई हो यह मैंने आज ही जाना !

कान्ता—(हँस कर) तुम्हें बातें बनाना खूब आ गई हैं यह भी

मैंने आज ही जाना नीला बहन !

नीला—मैं तो बातें ही बनाती हूँ, पर तुम तो जाने क्या क्या बनाने लगी हो मेरी भाभी !

[तीनों हँसती हैं ।]

नीला—अच्छा, तुम तो पूछ चुकीं अपने दादा के विषय में अब कुछ मैं भी पूछूँ ?

कान्ता—क्या.....?

नीला—मेरे दादा तो तुम्हें नहीं मिले थे ?

कान्ता—वे.....? नहीं तो.....क्यों ?

नीला—वे तुम्हारे ही यहाँ तो गये हैं ।

कान्ता—झूठ ! तुम हँसी कर रही हो ।

नीला—नहीं ! मैं सच कह रही हूँ कान्ता ! मुझ पर विश्वास न हो तो शीला से पूछ लो ।

[कान्ता प्रश्न भरी दृष्टि से शीला की ओर देखती है । शीला सर हिलाती है ।]

कान्ता—(उठकर) तब मैं चली बहन !

नीला—अरे बैठो न । ऐसी शीघ्रता क्या है ?

कान्ता—नहीं बहन । मुझे एक काम याद आगया है । और फिर वे मुझे घर पर न पायेंगे तो क्या कहेंगे ! नहीं, मुझे जाना ही चाहिये ।

[हँसती हुई कान्ता चली जाती है ।]

नीला—(हँसकर) क्यों, कैसी लगीं मेरी भाभी ?

शीला—अत्यन्त सुन्दर ! अब तनिक जीजा जी को भी तो दिखाओ ।

नीला—(लजाकर) हुश । कोई सुनेगा तो.....।

शीला—तो क्या होगा ? प्रेम करना पाप तो है नहीं.....! फिर प्रेम छिपाये से छिप तो सकता नहीं । लाख प्रयत्न करो कि मन की बात मन में ही रहे किन्तु ये बैरिन आँखें सब भेद खोल ही देती हैं ।

नीला—तुम ठीक कहती हो शीला !

[शीला उठकर सितार ले आती है । उसकी चंचल उँगलियाँ सितार के तारों पर नृत्य करने लगती हैं । वह गीत गाती है :—]

सखि ! सोलह श्रंगार करो री,

साजन आने वाले हैं !
तेरे साजन आने वाले हैं !!

[शीला के हाथ से सितार नीला ले लेती है। शीला उठ कर नृत्य करने लगती है।]

सखि ! सोलह श्रंगार करो री,

साजन आने वाले हैं !
तेरे साजन आने वाले हैं !!

आज मिलन के साज सजाओ;
और खुशी में नाचो गाओ;

झुम झुम झुम;

हृदय-गगन पर आज प्रणय के-

बादल छाने वाले हैं !
तेरे साजन आने वाले हैं !!
सखि ! सोलह श्रंगार करो री !
साजन आने वाले हैं !!

आई है रंगीन रवानी;
छाई है रंगीन जवानी;

झुम झुम झुम;

फिर से कलियाँ हँसीं,

फूल फिर से मुस्काने वाले हैं !
तेरे साजन आने वाले हैं !!
सखि ! सोलह श्रंगार करो री,
साजन आने वाले हैं ।

[बाहर के द्वार से तालियाँ बजाता हुआ सुरेश आता है ।]

सुरेश—अति सुन्दर शीला देवी, अति सुन्दर ! आपने इतना सुन्दर नृत्य और संगीत कहाँ सीखा ?

[नीला सितार कोने में रख देती है । सुरेश की प्रशंसा से शीला लज्जित हो जाती है । वह उत्तर नहीं देती, मौन ही रह जाती है ।]

नीला—कहाँ घूम आये भैय्या ?

सुरेश—ऐसे ही इधर उधर घूम रहा था । दादा और महाशयजी कहाँ हैं ?

नीला—दादा तो काम से गये हैं । चाचा जी प्रकाश देखने गये हैं ।

सुरेश—(शीला से) आप नहीं गईं प्रकाश देखने ?

शीला—जिसके मन का दीप बुझ गया है वह बाहर का प्रकाश देख कर क्या करेगा ? मेरे लिये मेरे मन का अन्धकार ही यथेष्ट है ।

[अन्दर से रामू 'नीला बीबी,' 'नीला बीबी' पुकारता है । नीला " अभी आई शीला " कह कर अन्दर चली जाती है । कमरे में केवल शीला और सुरेश रह जाते हैं । सुरेश अपनी कुर्सी शीला के कोच के समीप खिसका लेता है ।]

सुरेश—मैं आपका तात्पर्य समझा नहीं।

शीला—आप समझ कर करेंगे ही क्या ?

सुरेश—मन का दुख कहने से कम हो जाता है।

[शीला तीव्र दृष्टि से सुरेश की ओर देखती है। उसके मुख पर गंभीरता है।]

शीला—हृदय की पीर तो रोने से भी कम हो जाती है सुरेश बाबू...! पर...पर मैं तो खुल कर रो भी नहीं सकती।

सुरेश—रोयें आप के शत्रु ! कैसी अशुभ बातें करती हैं आप ? लगता है जैसे आप अभी से दार्शनिक बन गई हों। अभी आप की आयु ही क्या है ?

शीला—दार्शनिक कोई आयु से नहीं, चिन्तन और अनुभव से बनता है। इतनी ही आयु में मैंने सब कुछ देख लिया है—सब कुछ ! अब और देखने को न तो कुछ शेष ही है और न उसकी इच्छा ही है सुरेश बाबू।

सुरेश—इस संसार से परे एक और भी संसार है शीला। वहाँ सदैव आनन्द ही आनन्द है, सुख ही सुख है। मरुभूमि में भटके हुए यात्रियों को जैसे शीतल छाया नई शक्ति, नूतन साहस तथा नव जीवन प्रदान करती है उसी प्रकार जीवन-संघर्ष से थके प्राणियों के लिये उस लोक की कल्पना मात्र ही नव स्फूर्ति दायिनी है। जानती हो वह लोक क्या और कहाँ हैं ?

शीला—आपका संकेत कदाचित स्वर्ग की ओर है ?

सुरेश—स्वर्ग काल्पनिक है। मैं जिस लोक की चर्चा कर रहा हूँ वह है प्रेम-लोक और उसका स्थान है हृदय।

[शीला गूढ़ दृष्टि से उसकी ओर देखती है। सुरेश उत्साहित हो जाता है।]

सुरेश—हाँ शीला, वह लोक है प्रेम-लोक और उसका स्थान है हृदय ! प्रेम जीवन है, प्राण है, स्फूर्ति है, शक्ति है। जीवन से निराश लोगों में मैंने जीवन का मोह जागते देखा है इसी प्रेम के कारण।

शीला—(मंद स्वर में) आपकी बातें सुनने में तो भली लगती हैं

सुरेश बाबू, किन्तु जब मैं उनके अर्थ सोचती हूँ तो समझ में कुछ नहीं आता। आप जिस प्रेम का इतना गुणगान कर रहे हैं उसे मैं जीवन की सबसे महान पराजय मानती हूँ।

सुरेश—वह पराजय ही महान जीत है शीला! ऐसी पराजय जीवन में बार बार नहीं मिलती और पराजय का वह अमूल्य क्षण ही हमारे जीवन की बहुमूल्य निधि बन जाता है।

शीला—हो सकता है। पर प्रेम के कारण लोगों को जो जो बलिदान करना पड़ते हैं, जो जो यंत्रणायें सहनी पड़ती हैं उन्हें भी जानते हैं आप?

सुरेश—जानता तो नहीं, पर अब जान लूंगा!

शीला—जी.....!

सुरेश—(और समीप आकर) हाँ शीला! अभी तक यह समझने का अवसर ही नहीं मिला। परन्तु आज लगता है कि जैसे अब मनका वह मीत मिल गया है जिसकी मुझे खोज थी। सच, जब से तुम्हें देखा है, हृदय में आन्दोलन सा उठ खड़ा हुआ है। उर की वीणा के तार झंकृत हो उठे हैं। सुनो, इस व्याकुल वीणा के तारों की अविरल झंकार तुम भी सुनो!

[सुरेश भावावेश में आकर शीला की ओर झुकता है। शीला घबरा जाती है। उसी समय बाहर के द्वार का पर्दा हटाकर वजीरचन्द आता है। उसे देखकर सुरेश कुर्सी पर बैठ जाता है। उसका मुख फीका पड़ जाता है। शीला फर्श की ओर देखती रहती है। वजीरचन्द गंभीर दृष्टि से पहले शीला की ओर फिर सुरेश की ओर देखता है। उसके मुख पर भावों का चढ़ाव-उतार स्पष्टरूप से दृष्टि गोचर होता है। वह धीरे धीरे शीला की ओर बढ़ता है।]

वजीरचन्द—क्या बात है सुरेश.....?

सुरेश—कुछ नहीं! इनकी तबियत ठीक नहीं मालूम देती!

वजीरचन्द—(शीला के समीप बैठकर उसके सर पर हाथ फेरते हुये) क्यों, क्या बात है बेटी.....?

शीला—(टूटे स्वर में) कुछ नहीं पिता जी.....! यूंही.....!

सुरेश—(बीच में ही) इनके सर में पीड़ा हो रही है। मैं बाजार से अभी एस्प्रो लेकर आता हूँ!

[सुरेश उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही तीव्र गति से बाहर चला जाता है। बजीरचन्द को शंका हो जाती है! वह उठकर धीरे २ खिड़की के समीप जाता है।]

वजीरचन्द—(धीमे स्वर में) बेटी! कुछ बातें ऐसी होती हैं जो बाहर तो शकर की तरह मीठी किन्तु अन्दर विषकी तरह कड़वी होती हैं। जो लोग.....!

शीला—(व्यग्र स्वर में) पिता जी.....!

बज़ीरचन्द—हाँ बेटी! जो लोग उन की बाहरी मिठास पर ही रीझ जाते हैं उन्हें बाद में विष का तीखा घूँट भी पीना पड़ता है।

शीला—(रुद्ध स्वर में) पिता जी! मैं.....मैं सब समझती हूँ। मैं आप की.....आप की बेटी हूँ!

वज़ीरचन्द—ठीक है बेटी! भलाई इसी में है कि हम ऐसी बातों से दूर रहें। उनकी ऊपरी मिठास को भूल कर उन के अन्दर भरे हुये विष को सदैव याद रक्खें!

शीला—क्या मैंने कोई भूल की है पिता जी.....?

वज़ीरचन्द—नहीं बेटी! पर भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। और फिर यह अवस्था तो भूलों की भूलभुलैयाँ ही है!

[शीला सर नीचा कर के मौन खड़ी रहती है]

वज़ीरचन्द—(आद्र स्वर में) बेटी! यदि आज तुम्हारी माँ होती तो वही तुम्हें यह शिक्षा देती। (उस की आँखों की कोरें भीग जाती हैं। वह अश्रु बुन्दों को पोंछ लेता है।) माता के अभाव में पिता को ही माँ बनना पड़ता है। इसी लिए.....इसी लिए.....!

शीला—(बीच में ही भीगे स्वर में) पिता जी.....!

बज़ीरचन्द—इसी लिए मैं यह कह रहा हूँ बेटी कि धन-सम्पति-वैभव सब कुछ तो लुट गया पर अभी एक रत्न बचा है। वह रत्न है लाज! वह लाज जिसे हम प्राणों से भी अधिक चाहते हैं और जिस की रक्षा के लिए ही हम दर दर के भिखारी बने हैं बेटी.....!

शीला—(सिसकते हुये) पिता जी.....!

वज़ीरचन्द—बेटी ! तेरी लाज ही मेरी सब से प्यारी निधि है ! देख, कहीं भूल से.....भूल से उस प्यारे रत्न को चूर चूर न कर देना !

[वज़ीरचन्द भी सिसकने लगता है ।]

शीला—(सिसकते हुये) पिता जी ! मैं.....मैं.....आप को विश्वास दिलाती हूँ.....विश्वास दिलाती हूँ.....कि कभी .....कभी कोई ऐसा काम नहीं करुँगी जिस से.....जिस से .....मेरे या आप के मान को ठेस पहुँचे ! यह मेरा.....आप की पुत्री का..... बचन है पिता जी !

[वज़ीरचन्द शीला को हृदय से लगा लेता है । नेपथ्य से करुण संगीत की ध्वनि आती है । शीला के आँसू वज़ीरचन्द के कन्धे पर गिरते रहते है । धीरे धीरे यवनिका गिरती है]

द्वितीय अङ्क

दृश्य— वही ड्राइंग रूम ।

समय —प्रातःकाल ।

[कमरे में धीमा धीमा प्रकाश है। खिड़की खुली हुई है। सामने की कोच पर सुरेश लेटा है। उसकी आँखें बन्द हैं और बाल बिखरे हुये हैं। कुछ क्षण बाद वह धीरे धीरे आँखें खोलता है और फिर उठ कर बैठ जाता है। आँखें मल कर अँगड़ाई लेता है और फिर खड़ा हो जाता है। जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाता हुआ वह खिड़की तक जाता है। तभी बाहर से मधुप आता है।]

सुरेश—आओ मधुप। आज सवेरे सवेरे कैसे टपक पड़े ?

मधुप—राशन लेने जारहा था। सोचा, तुमसे मिलता चलूँ।

सुरेश—राशन ? दूकान तो दस बजे खुलती है और अभी तो (कलाई में बँधी घड़ी को देख कर) केवल सात ही बजे हैं।

मधुप—अभी से जाकर यदि लाइन मे न खड़ा हुआ तो समझो दिन भर की फुर्सत है। एक तो भर पेट भोजन नहीं मिलता और दूसरे घंटों धूप में खड़े खड़े तपस्या करनी पड़ती है।

सुरेश—अच्छा ! मैं तो समझता था..... ।

मधुप—(बीच में ही) तुम बड़े बाप के बड़े बेटे हो सुरेश ! तुम्हें इन सब कठिनाइयों का क्या ज्ञान ?

[सुरेश कोच पर बैठ जाता है। मधुप भी समीप ही बैठता है।]

सुरेश—तो क्या आज विद्यालय नहीं जाओगे ?

मधुप—कैसे जा सकूँगा ? राशन लेकर उसमें से हिमालय के लघु संस्करण अलग करना है, चक्की पर जाना है, चूल्हा ... ...

सुरेश—(हँस कर) शादी क्यों नहीं कर लेते यार ?

मधुप—शादी ? शादी के अर्थ हैं बरबादी। कौन भलामानुस अपनी लड़की मुझे देगा ? विद्यालय की कमेटी बहुत कृपा कर के साठ रुपये देती है और रसीद लेती है दो सौ की। कहीं देखा है ऐसा अन्धेर ? साठ रुपये मेरे ही लिये कम है फिर भला ··· ··· ।

सुरेश—ठीक कहते हो यार। हाँ, क्या कविता से कुछ नहीं मिलता ?

मधुप—मिलता है भाड़। जिसे देखो वही तो कवि बन बैठा है। भंड कवि अपने गले के बल पर कवि-सम्मेलनों पर अधिकार जमाये हैं, सम्पादकों के इष्ट-मित्र, नाते-रिश्तेदार, पत्र-पत्रिकाओं पर छाये हैं। हम जैसों की कहाँ पूछ है ?

सुरेश—कवि-सम्मेलनों में तुम भी जाया करो। आजकल तो आये दिन कहीं न कहीं होते ही रहते हैं। कुछ न कुछ मिल ही जायेगा।

मधुप—(हँसकर) इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि आज कल कवि सम्मेलन खूब होते हैं। किसी के लड़का हुआ, उसने बुला लिया कवियों को। न सही भाँड़, कवि ही सही। किसी के पुत्र का यज्ञोपवीत, मुन्डन या विवाह-संस्कार हुआ, उसने करा लिया कवि-सम्मेलन। न सही वेश्या का नृत्य और संगीत, कवित्रियाँ ही सही।

सुरेश—बहुत जले बैठे ही यार !

मधुप—मैं सच कह रहा हूँ सुरेश ! ऐसी छीछालेदर हो रही है कवि-सम्मेलनों की कि कोई भी स्वाभिमानी कवि उनमें भाग लेना नहीं चाहता। आचार्य सनेही जी भी अपने रक्त-सिंचित इस विटप की यह दुर्दशा देख कर दुखी होते होंगे। यदि यही हाल रहा तो दस पाँच वर्षों में कवि लोग सारंगी और तबले लेलेकर कवि सम्मेलनों में जाने लगेंगे ताकि वे अपने गले की कला दिखा सकें।

सुरेश—जब ऐसा होने लगेगा तभी मैं भी सुनने चला करूँगा।

[दोनों हँसते हैं। सुरेश एक सिगरेट फिर जलाता है।]

मधुप—अच्छा, छोड़ो इन बातों को। रात कैसे कटी ?

सुरेश—(निश्वास छोड़ कर) कुछ न पूछो यार ! रात भर इसी कोच पर तड़पता रहा।

मधुप—अरे ! मैं तो समझता था कि रात भर प्रणय-पुस्तिका के पृष्ट पलटे गये होंगे।

सुरेश—दाँव तो मारा था मैंने, पर बीच में ही उसका पिता आ टपका। सारा आनन्द धूल में मिला दिया।

मधुप—(हृदय पर हाथ रख कर) हाय, हाय ! अधरों से लगे मदिरा के प्याले को चूर-चूर कर दिया निष्ठुर ने।

सुरेश—कुछ न पूछो यार ! इच्छा तो हुई कि बूढ़े का सर फोड़ दूं, पर न जाने क्या सोच कर रुक गया।

मधुप—कुछ आशा है या नहीं ?

सुरेश—क्यों नहीं ? पहला पाठ तो पढ़ा दिया है। दूसरा पाठ पढ़ाने भर की देर है।

मधुप—अच्छा··· ··· ··· ··· ?

सुरेश—हाँ ! और यदि तब भी न मानी तो जानते हो क्या करूंगा मैं ?

मधुप—(उत्सुकता से) क्या ?

सुरेश—(गंभीर वाणी में) पुरानी नीति का अनुसरण।

मधुप—क्या, बल का प्रयोग··· ··· ··· ?

सुरेश—अवश्य··· ···। लड़कियाँ स्वभाव से ही लजीली होती हैं। जो व्यक्ति यह जानता है कि कब उनकी 'न' के अर्थ 'हाँ' हैं, वही एक सफल प्रेमी बन सकता है। और फिर नई चिड़िया पर फड़फड़ाती ही है, नई मछली तिलमिलाती ही है।

मधुप—तुलना तो अनुपम की है। है कहाँ वह इस समय ?

सुरेश—अन्दर है। क्यों··· ··· ·· ?

मधुप—दर्शन कराओगे ?

सुरेश—अच्छा ! मेरे ही सामने ऐसी बात। उठो भागो यहाँ से।

[मधुप हँसता हुआ बाहर चला जाता है। अन्दर से सेठ जी आते हैं।]

सेठ जी—कौन था ?

सुरेश—मधुप था पिता जी।

सेठ जी—मोहनलाल तो नहीं आया था ?

सुरेश—नहीं। (बाहर के द्वार की ओर देख कर) पर कदाचित वही आरहे हैं।

[बाहर से मोहनलाल आता है। सुरेश अन्दर चला जाता है। मोहनलाल कुर्सी पर बैठ जाता है। सेठ जी कोच पर विराजते है।]

सेठ जी—सब प्रबन्ध ठीक है मोहनलाल ?

मोहनलाल—जी, सब कुछ ठीक है। अमरनाथ ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। प्रातःकाल से ही वह श्रमिकों को हड़ताल करने के लिये भड़काता फिर रहा है।

सेठ जी—अजीत के क्या हाल हैं ?

मोहनलाल—जी, वह जी-जान से हड़ताल रोकने का प्रयत्न कर रहा है, सेठ जी।

सेठ जी—अजीत भयंकर व्यक्ति है। उसका श्रमिकों पर प्रभाव है। उसकी उपस्थिति मे हड़ताल न हो सकेगी। अमरनाथ से कह देना कि यदि अजीत सीधे न माने तो ·· ··· ··· ।

मोहनलाल—जी, मैं समझ गया सेठ जी। अमरनाथ को ऐसा आदेश अभी दे दूँगा।

सेठ जी—ठीक है। एक चिन्ता तो दूर हुई। हाँ, वह व्यापारी आया था ?

मोहनलाल—जी हाँ ! पाँच सौ गाँठों का सौदा भी होगया है।

सेठ जी—कितने प्रतिशत पर··· ··· ?

मोहनलाल—जी, ५० प्रतिशत पर। आज कल कपड़े का उठान कम है सेठ जी।

सेठ जी—ठीक है। समय को देखते दाम कम नहीं हैं। माल कब लदेगा ?

मोहनलाल—जी, आज ही। रेलवे और पुलिसवालों को प्रसन्न कर दिया है।

सेठ जी—बिना उन्हें प्रसन्न किये तो आज कल काम ही नहीं चलता। सरकार कहती है कि हम व्यापारी ब्लेक करते हैं, पर अपने

कर्मचारियों के इस ब्लेक को वह नहीं देखती। हम व्यापारी यदि ब्लेक न करें तो उन्हें पुरस्कार कहाँ से दें, दिन प्रति दिन लगने वाले चन्दों के लिये धन कहाँ से लायें ?

मोहनलाल—जी, ठीक है सेठ जी। तेल तिल से ही निकलता है। पर फिर भी हमें सावधान रहना है। यदि कहीं कुछ हो गया तो·····।

सेठ जी—(बीच में ही) होगा क्या··· ··· ? जानते हो, अभी गाँधी-निधि में एक लाख रुपया दिया है। नगर काँग्रेस कमेटी को प्रति वर्ष सहस्त्रों रुपये किस लिये देता हूँ ? तुम कुछ चिन्ता न करो मोहनलाल। हमारा कोई कुछ भी न करेगा।

मोहनलाल—जी··· ···आप ठीक कहते हैं।

सेठ जी—हाँ, तुम्हारे जाने के बाद कल मनमोहन आये थे। ५०० गाँठों के निर्यात के लिये अधिकार-पत्र दिलाने का बचन दे गये हैं।

मोहनलाल—(आश्चर्य से) जी, मनमोहन और बचन····· ?

सेठजी—मैं जानता हूँ मोहनलाल। पर उनके भान्जे को चार आने का साझीदार जो बना लिया है।

मोहनलाल—जी; भान्जा···? उनके तो कोई भान्जा है नहीं।

सेठजी—तुम इतनी सी बात भी नहीं समझते मोहनलाल। भान्जे का तो नाम है, वास्तविक साझीदार तो वे ही हैं।

मोहनलाल—जी·····!

सेठजी—हाँ मोहनलाल ! आजकल की राजनीति यही कहती है। सब कुछ करो, पर अपना नाम कहीं न आने दो।

मोहनलाल—जी, ऐसे ही लोग तो काँग्रेस को बदनाम करते हैं सेठजी !

सेठजी—और काँग्रेस में ऐसे ही व्यक्तियों की भरमार है। (गाँधी जी के चित्र के हाथ जोड़कर) हे बापू ! हे स्वर्ग निवासी पुन्यात्मा ! देख रहे हो ? किस प्रकार आपके तथा पवित्र काँग्रेस के नाम पर कलंक की कालिमा लगाई जा रही है। इसी का नाम कलयुग है। शिव, शिव, शिव, !!

मोहनलाल—जी, और आश्चर्य तो यह है कि हमारी सरकार,

हमारे मंत्री ऐसे लोगों के विरुद्ध कुछ करते भी नहीं।

सेठजी—उन बिचारों को इतना कहाँ समय कि वे इन छोटी छोटी सी बातों के चक्कर में पड़ें। उन्हें तो बड़ी बड़ी सभाओं में भाषण देने, सेठ साहूकारों के यहाँ उत्सवों मे भाग लेने, और इधर उधर असंख्य संस्थाओं तथा केन्द्रों का उद्घाटन करने से ही अवकाश नहीं मिलता।

मोहनलाल—जी, मैं भी समाचार-पत्रों में यही सब पढ़ता हूँ और सोचता हूँ कि शासन कार्य करने के लिये उन्हें किस समय अवकाश मिलता होगा! इधर उधर के व्यर्थ कामों को वे अन्य नेताओं के लिये क्यों नहीं छोड़ देते·····?

सेठजी—यह भी राजनीति है। अगले चुनाव जीतना है न! और फिर कुछ लोगों को भाषण देने का रोग भी तो होता है।

मोहनलाल—जी, यह बीसवीं सदी का रोग है कदाचित्।

[दोनों हँसते हैं।]

सेठजी—होगा, हमें क्या पड़ी है जो दूसरों की आलोचना करें। अभी कहीं कोई सुनले तो लेने के देने पड़ जायें।

मोहनलाल—जी, पर यह तो प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। प्रजातंत्र राज्य में तो प्रत्येक को अपना मत प्रकट करने का अधिकार है। इँगलैंड में·····!

सेठजी—(बीच में ही) कभी गये हो इँगलैंड·····?

मोहनलाल—जी, गया तो नहीं हूँ पर सुना है कि··· ···।

सेठजी—सुनी हुई बात छोड़ो। सौ बातों की एक बात मैं तुम्हें बताता हूँ! प्रजातंत्र नाम की कोई वस्तु इस संसार में है ही नहीं। भोली जनता को ठगने के लिए वह केवल शब्द जाल है। सच्चा प्रजातंत्र तो राम-राज के साथ ही समाप्त हो गया।

मोहनलाल—जी, ठीक कहते हैं आप! और जो कुछ बचा था वह बापू के साथ चला गया। आज तो उन्हीं के अनुयायी उनके सिद्धान्तों की अवहेलना करते हैं।

सेठजी—शक्ति मनुष्य को अन्धा कर देती है मोहनलाल। जाने वाला तो चला गया पर उसके पुनीत नाम की छीछालेदर अभी बाकी

है। हमने तो समझ लिया कि जिस दिन बापू की हत्या की गई उसी दिन भारत के भाग्य फूट गये।

मोहनलाल—जी हाँ। जो एक आध सच्चे और तपे हुये नेता हैं भी वे बिचारे अकेले क्या क्या करें? उनके बाद.....हे भगवान...! तू ही रक्षक है इस अभागे देश का।

[अन्दर से वज़ीर चन्द और बाहर से रमेश आता है। दोनों दूसरे कौच पर बैठ जाते हैं।]

सेठजी—(वज़ीरचन्द से) कहिये, जलपान कर लिया?

वजीरचन्द—जी हाँ!

सेठजी—(मोहनलाल की ओर मुड़कर) यह मेरे अतिथ है और यह मेरे मैनेजर मोहनलाल!

[दोनों एक दूसरे को नमस्कार करते हैं।]

सेठजी—रमेश! तुम इनके साथ बैठना। मैं मोहनलाल के साथ आवश्यक कार्य से बाहर जा रहा हूँ।

[सेठजी और मोहनलाल बाहर चले जाते हैं।]

वजीरचन्द—कहिये, टहल आये रमेश बाबू?

रमेश—जी हाँ। नीला, शीला और सुरेश कहाँ हैं?

वजीरचन्द—अन्दर हैं। आते ही होंगे।

[अन्दर से नीला, शीला और सुरेश आते हैं। नीला, शीला कौच पर बैठ जाती हैं! सुरेश कुर्सी पर बैठता है।]

नीला—दादा! याद है, आज मेरा जन्म-दिन है?

सुरेश—(बीच में ही) अच्छा। तब तो आज संगीत और नृत्य का आयोजन रहेगा। शीला जी तो दोनों कलाओं में निपुण हैं।

[सुरेश सब की आँख बचाकर शीला की ओर देखता है। वह फर्श की ओर देखने लगती है। मुख भावहीन है।]

नीला—संगीत के लिये मैं कान्ता को बुला लूँगी।

[नीला तिरछी दृष्टि से रमेश की ओर देखती है। वह दूसरी ओर देखने लगता है।]

शीला—(हँसकर) और साज देने के लिये अजीत जी ठीक रहेंगे।

[नीला लजा जाती है। रमेश चौंककर शीला की ओर देखता है। उसके अधरों पर शरारत पूर्ण मुस्कान है। रमेश को भी हँसी आ जाती है।]

रमेश—(गंभीरता से) पर अजीत और कान्ता कदाचित यहाँ न आ सकें।

नीला—(व्यग्रता से) क्यों ?

रमेश—मील में कुछ लोग हड़ताल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अजीत इस हड़ताल को असफल करना चाहता है। उसके मत में यह हड़ताल श्रमिकों के हित में नहीं है। मेरा अपना भी यही विचार है।

सुरेश—पर इससे क्या·····?

रमेश—अजीत का विचार है कि इस हड़ताल के पीछे कोई भयंकर जाल है। हड़ताल करने के लिए श्रमिकों को धन दिया जा रहा है। यह धन कहाँ से आता है, कौन व्यय कर रहा है, यह अब भी एक पहेली है।

नीला—पर·····पर·····!

रमेश—अजीत को संदेह है कि इसके पीछे पिताजी का हाथ है।

नीला—नहीं ऐसा नहीं हो सकता। पिताजी को इससे क्या लाभ ?

सुरेश—अवश्य अजीत को भ्रम हुआ है दादा ! पिताजी को हड़ताल से क्या लाभ हो सकता है ?

रमेश—यही मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है। पर एक न एक दिन भेद खुलेगा ही।

नीला—कुछ भी हो, पर कान्ता को तो मैं पकड़ कर ले ही आऊँगी दादा !

रमेश—(प्रसन्न मुद्रा में) सच·····! तब मैं भी अजीत को घसीट कर ले ही आऊँगा।

[सब हँस पड़ते हैं। सुरेश उठकर बाहर चला जाता है। बाहर से सेठजी और मनमोहन आते हैं।]

सेठजी—बहुत प्रसन्न हैं सब लोग·····! क्या बात है ?

[सब लोग खड़े हो जाते हैं।]

रमेश—आज नीला का जन्म दिन है पिताजी। हम लोग सब को निमन्त्रण देने जा रहे हैं। संगीत और नृत्य का आयोजन भी है।

सेठजी—संगीत और नृत्य का आयोजन है···। तब तो मैं सम्मिलित न हो सकूँगा। (नीला की ओर मुड़कर) पर तुम चिन्ता न करो बेटी। तुम्हारा उपहार तो तुम्हें मिलेगा ही।

[नीला, शीला और रमेश हँसते हुये बाहर चले जाते हैं। बजीर-चन्द कुछ क्षण तक उधर देखता रहता है फिर उठकर अन्दर चला जाता है। सेठजी और मनमोहन कोच पर बैठ जाते हैं।]

सेठजी—कहिये, आप उनसे मिल आये?

मनमोहन—जी हाँ! परमिट आजकल में मिल जायेगा। उन्होंने वचन दे दिया है पर·····!

सेठजी—पर क्या·····?

मनमोहन—उनकी पुत्री का विवाह है इसी सप्ताह में। कुछ फायन कपड़ा चाहिए। कहने लगे·····!

सेठजी—(बीच में ही) इसमें कहने की क्या बात है। कपड़ा आज ही पहुँच जायेगा।

मनमोहन—हाँ, लड़की का काम है·····!

सेठजी—अरे, लड़के का होता तब भी क्या? हम क्या इतना भी नहीं कर सकते?

मनमोहन—मैं आप का स्वभाव जानता हूँ सेठजी। यदि ऐसा न होता तो आपकी ओर से उन्हें वचन न दे आता।

सेठजी—आपने ठीक किया—! अच्छा यह तो बताइये कि उस सम्मेलन का क्या हुआ? क्या अब नहीं होगा?

मनमोहन—सम्मेलन कैसे होगा सेठजी? लोग चन्दा देते नहीं। समझते हैं हम चन्दा खा जाते हैं।

सेठजी—गधे हैं ऐसा कहने वाले। भला चन्दा कहीं कोई खा जाता है। खैर, लेकिन हाँ, कुछ चन्दा हुआ तो था। एक हजार रुपया तो मैंने ही दिया था आप को।

मनमोहन—हाँ, इसी तरह कुल पाँच हजार हुये थे। भला कहीं

इतने धन से सम्मेलन होता है। वे तो पत्र-व्यवहार, विज्ञापन और ऊपरी प्रबन्ध में ही व्यय हो गये।

सेठजी—(हँस कर) ऐसे कामों में व्यय तो होता ही है। कोई बात नहीं। सम्मेलन नहीं होगा तो न हो। मुझे सम्मेलनों का चाव भी नहीं है। वह तो आप थे तो चन्दा भी दे दिया, कोई और आता तो एक कानी कौड़ी भी नहीं देता।

मनमोहन—यह आप की कृपा है सेठजी। अच्छा अब आज्ञा दीजिये।

[नमस्कार करके मनमोहन चला जाता है। अन्दर से वजीरचन्द आता है।]

वजीरचन्द—(बैठकर) यह महाशय तो कोई बड़े नेता लगते थे।

सेठजी—अजी नेता क्या नेता की दुम भी नहीं हैं। टुटपुंजिये भाई हैं। ऐसे ही लोग काँग्रेस को अपयश के गर्त में धकेल रहे हैं। अभी हाल ही में एक सम्मेलन के नाम पर धन एकत्र किया और जब आज पूछा कि सम्मेलन कब होगा तो कहने लगे कि सम्मेलन नहीं होगा। भाई, क्यों नहीं होगा? चन्दा नहीं हुआ। दस पाँच हजार रुपया चन्दे में आया था सो डकार गए।

वजीरचन्द—राम! राम!! ऐसा अनर्थ? भगवान भारत का उद्धार कैसे होगा?

सेठजी—जब एक पापी ही सारी नाव को डुबा देता है भाई साहब तो फिर इस देश की नौका का क्या होगा? यहाँ तो जिसे देखो, पापी ही पापी है।

वजीरचन्द—आप ठीक कहते हैं भाई साहब। धोती के अन्दर सभी नंगे हैं। अन्तर इतना है कि किसी के पाप प्रकट हो जाते हैं और किसी के छिपे रहते हैं।

[सेठजी विचित्र दृष्टि से वजीरचन्द की ओर देखते हैं। उन्हें लगता है कि व्यंग उन्हीं पर किया गया है।].

सेठजी—आप का आशय····· ?

वजीरचन्द—मेरा आशय यह है कि निर्धनों का छोटे से छोटा पाप

भी उनके फटे वस्त्रों के अन्दर से उनके शरीर के अवयवों की भाँति ही झाँकने लगता है किन्तु धन वालों का बड़े से बड़ा पाप भी उनकी भारी जेब में पड़े नोटों में ढककर रह जाता है।

[सेठजी उसी दृष्टि से उसकी ओर फिर देखते हैं। वह उठकर खिड़की के पास चला जाता है।]

सेठजी—आपकी बातें बड़ी मार्मिक हैं भाई जी। अच्छा, इस समय तो मुझे बाहर जाना है। फिर कभी विस्तार में बातें होंगी।

[सेठजी उठकर बाहर चले जाते हैं। वजीरचन्द धीरे धीरे खिड़की की ओर बढ़ता है फिर सिर को दोनों हाथों में थाम कर कोच पर बैठ जाता है। बाहर से हँसी तथा बातों का शब्द आता है। कुछ क्षण बाद शीला, नीला और रमेश अन्दर आते हैं। उनके साथ गंभीर मुद्रा में कान्ता भी है। वजीरचन्द चौंक कर सब की ओर देखता है।]

शीला—(उसकी ओर बढ़कर) आप स्वस्थ तो हैं पिता जी?

वजीरचन्द—ठीक हूँ बेटी। थकान है। मैं अन्दर जा रहा हूँ विश्राम करने। तुम इन लोगों के साथ रहो।

[वजीरचन्द उठकर अन्दर चला जाता है। सब उसकी ओर देखते रहते हैं।]

नीला—(शीला से) चलो शीला, हम लोग अन्दर चलें।

शीला—चलिये। पिता जी अस्वस्थ हैं कदाचित!

नीला—उन्हें एकाकीपन खल रहा होगा। हम लोग चल कर उनका मन बहलायेंगी।

शीला—(कान्ता की ओर मुड़कर) हमें आज्ञा है, कान्ता बहन?

[कान्ता मौन रहती है।]

नीला—(हँसकर) उन से क्या पूछती हो शीला? मन की बात मुँह पर लाने में लाज लगती है बिचारी को।

[कान्ता क्रुद्ध दृष्टि से नीला की ओर देखती है। नीला और शीला हँसती हुई अन्दर चली जाती हैं। कमरे में कान्ता और रमेश रह जाते हैं। रमेश मन्द गति से खिड़की के समीप जाता है। कान्ता दृष्टि नीची किये खड़ी रहती है। रमेश मुड़कर कान्ता की ओर देखता है।]

रमेश—खड़ी क्यों हो ? बैठ जाओ कान्ता !

कान्ता—जी·····। जी मैं ठीक हूँ।

रमेश—(हँसकर) यह तो मैं देख रहा हूँ। अब बैठ भी जाओ।

[कान्ता कोच पर बैठ जाती है। संकोच के चिन्ह उसके कपोलों पर अपनी छाप छोड़े हैं।]

रमेश—जानती हो, नीला और शीला क्यों अन्दर चली गई है ?

कान्ता—(मन्द स्वर में) शीला के पिता अस्वस्थ हैं।

रमेश—(हँस कर) बहुत भोली हो कान्ता। वे इसलिये चली गई हैं जिससे हम अकेले रह जायें।

[कान्ता मौन रहती है। उसकी दृष्टि फर्श पर बिछे कालीन पर जमी है।]

रमेश—(कोच की ओर मुड़ते हुये) अब हम अकेले हैं कान्ता !

कान्ता—(सर उठा कर मन्द स्वर में) मैं तो कभी अकेले नहीं रहती। किसी का ध्यान सदैव मेरे साथ रहता है।

रमेश—मेरी भी यही दशा है कान्ता। जानती हो मनुष्य एकाकी रह कर भी एकाकी कब नहीं रहता ?

कान्ता—मैं क्या जानूँ ?

रमेश—(पास आकर) तुम झूठ बोल रही हो कान्ता। तुम सब कुछ जानती हो—सब कुछ। मैंने तुम्हारी आँखों में वह ज्योति—वह चमक—देखी है जो जीवन में केवल एक बार आती है। जानती हो कब ?

[कान्ता नकारात्मक सिर हिलाती है। उसकी आँखों में मन्द मुस्कान है। रमेश जाकर उसके पीछे खड़ा हो जाता है।]

रमेश—(कोच पर कोहनी टिका कर झुकते हुए) वह ज्योति—वह चमक—तब आती है जब किसी से प्यार हो जाता है।

कान्ता—(घबरा कर) प्यार··· ··· ? मैं··· ··· नहीं··· ···।

रमेश—(हँस कर) प्यार वह आग है जो छिपाये से नहीं छिपती। मैं जानता हूँ, मुझे विश्वास है, कि तुम प्यार करती हो—प्यार के मर्म को समझती हो। किन्तु·····

[कान्ता आँखें उठा कर प्रश्न भरी दृष्टि से रमेश की ओर देखती है। वह क्षण भर मौन रह कर फिर उसी स्वर में कहता है।]

रमेश—किन्तु··· ···किन्तु मैं यह नहीं जानता कि वह भाग्यवान कौन है जिसे··· ··· जिसे तुम्हारा प्यार··· ··· ···।

[कान्ता शीघ्रता से अपने हाथ से रमेश का मुख बन्द कर देती है। फिर उसकी आँखों में अपनी सुन्दर तथा काली आँखें डाल कर गंभीर स्वर में कहती है।]

कान्ता—जान कर अनजान बनने की कला कोई आप से सीखे। क्यों रह रह कर मेरे हृदय पर आघात कर रहे हैं आप ?

रमेश—आघात ? यदि मेरी किसी बात से तुम्हें दुख पहुँचा हो तो क्षमा चाहता हूँ।

कान्ता—फिर वही बात। क्या आप भी पाषाण के देवता की भाँति ही हृदय हीन हैं ?

रमेश—(हँस कर) मैं और देवता ? मैं तो एक देवी के पावन मन्दिर में प्रवेश करने योग्य पुजारी बनने का प्रयास भर कर रहा हूँ।

कान्ता—कौन है वह देवी ? जरा मैं भी तो सुनूँ।

रमेश—मेरी देवी सदैव मेरी आँखों के सामने रहती है।

कान्ता—(बन कर) अच्छा !(चारों ओर देख कर) इस समय तो मुझे कहीं कोई देवी नहीं दिखाई दे रही है।

रमेश—(घूम कर कान्ता के सामने आकर) इस समय भी वह मेरे सामने ही है।

कान्ता—कहाँ ?

रमेश—(कान्ता का हाथ पकड़ कर) कान्ता, क्या इस पुजारी की उपासना व्यर्थ ही जायेगी ? मैं तो वरदान की आशा लगाये था और यहाँ देवी को यह पता ही नहीं कि कोई उसका पुजारी भी है।

कान्ता—मुझे मीठे सपनों के झूले न झुलाइये रमेश बाबू ! मैं पागल हो जाऊँगी। (कान्ता आँखें बन्द कर लेती है। रमेश उसके समीप ही बैठ जाता है।)

रमेश—कान्ता, आँखें खोलो। मुझे इन नील सरोवरों की गहराइयों

में डूब जाने दो।

कान्ता— (आँखें खोल कर कोच से उठते हुये) मुझे डर है कि कहीं आज की देवी कल दर दर की भिखारिणी न बन जाये।

रमेश—(उठ कर) कान्ता ! मेरी इन आँखों में झाँक कर देखो !

कान्ता—(बीच में ही) मैं एक साधारण श्रमिक की बहन हूँ। आप मिल मालिक के पुत्र हैं। झोपड़ी को महल के स्वप्न··· ··· ।

रमेश— (बीच में ही गंभीर स्वर में) झोपड़ी और महल का समन्वय ही मेरे जीवन का ध्येय रहा है कान्ता। यदि यह महल ही हमारे बीच की खाई है तो मैं आज ही—अभी—इसे छोड़ कर.....!

[कान्ता आगे बढ़ कर रमेश के चरणों पर झुक जाती है।]

कान्ता—मेरा स्थान इन चरणों में है। देवी बना कर मेरे अधिकार को न छीनिये। मुझे दासी ही रहने दीजिये।

[रमेश कान्ता को उठा कर हृदय से लगा लेता है।]

रमेश—कान्ता, मेरी कान्ता ! तुम्हारा स्थान इस हृदय में है।

कान्ता—आज पुजारिन की मौन साधना सफल हुई। देव की कृपा-कोर हो गई मुझ पर !

रमेश—मुझे लज्जित न करो कान्ता ! मुझमें देवों के गुण तो नहीं, हाँ मनुष्यों की दुर्बलतायें अवश्य हैं।

कान्ता—(हँस कर) जिन्हें आप मानवीय दुर्बलतायें समझते हैं वे ही देवों की शक्तियाँ हैं।

रमेश—कान्ता !

कान्ता—हाँ, तभी तो देव भी मनुष्य बनने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। उन्हें कभी कभी अवतार लेना ही पड़ता है।

रमेश— (हँस कर) मुझे इतना ऊपर न उठाओ कान्ता कि गिरूँ तो सँभल भी न सकूँ।

[रमेश जाकर कोच पर बैठ जाता है। कान्ता भी समीप ही बैठ जाती है।]

कान्ता—आप तो स्वयं महान हैं। मैं आपको क्या उठाऊँगी ? हाँ, आपके पावन चरणों की रज से मेरा उद्धार अवश्य हो जायगा।

रमेश—आज मैं प्रसन्न हूँ कान्ता ! मेरा खोया हुआ स्वर्ग मुझे मिल गया है आज।

[रमेश कान्ता का दाहिना हाथ अपने हाथों में लेकर दबाता है।]

कान्ता—मेरे भी जन्म-जन्मान्तर के पुण्य उदय हुये हैं। डूबते को सहारा मिल गया है। अब मेरी जीवन-यात्रा.....!

रमेश— (कान्ता का हाथ छोड़ कर बीच में ही) हुश ! आज से 'मेरा' कुछ भी नहीं है, सब 'हमारा' है। अब हमारी जीवन यात्रा आनन्द से कट जायेगी।

कान्ता—इस नौका के अब आप ही कर्णधार हैं। चाहे पार लगा दें, चाहे मँझधार में ही छोड़ दें।

रमेश—मँझधार भी अब कूल बन जायेगा कान्ता। हम नीलाकाश के सागर में चाँद की नौका पर घूमेंगे। हमारा एक नया संसार होगा; नया आकाश, नया चाँद, नये तारे; नई धरती, नये फूल, नई कलियाँ !

कान्ता—(हँस कर) नई नई कलियों को देख कर कहीं मधुलोभी भ्रमर के समान मुझसे मुँह मोड़ कर उनसे नाता न जोड़ लेना।

रमेश— (हँस कर) ऐसी आशंका क्यों, कान्ता ? मैं तो पँखुरियों के समान सदैव तुमसे मिला रहूँगा। हँसूँगा तो तुम्हारे साथ, रोऊँगा तो तुम्हारे साथ; जिऊँगा तो तुम्हारे साथ और मरूँ.....

कान्ता—(अपने हाथ से रमेश का मुँह बन्द करती हुई) बस, बस ! अपशब्द मुँह से न निकालिये।

रमेश—अब तो अविश्वास न करोगी मेरा ?

कान्ता—(हँस कर) नहीं। क्या आप जानते हैं कि स्त्री की महान अभिलाषा क्या होती है !

रमेश—हाँ ! बताऊँ ?

कान्ता—बताइये !

रमेश—(हँस कर) माँ बनना !

कान्ता—(लजा कर) नहीं ! उसकी कामना होती है कि उसके

प्राण स्वामी के श्री चरणों में ही निकलें।

रमेश—(आर्द्र स्वर में) कान्ता !

कान्ता—(सजल नेत्रों से उसकी ओर देखती हुई) मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मेरी कामना पूर्ण हो।

[रमेश कान्ता का हाथ अपने हाथों में लेकर चूमना चाहता है। तभी अंदर से हँसती हुई नीला और शीला आती हैं। कान्ता लजा कर हाथ छुड़ा लेती है और खड़ी हो जाती है। रमेश भी उठ कर दूसरी कोच पर बैठ जाता है।]

नीला—(मुस्कराकर) खड़ी क्यों हो गईं कान्ता ! यदि मैं जानती कि मेरे आने से तुम्हें कष्ट होगा तो कभी न आती।

[कान्ता क्रुद्ध दृष्टि से नीला की ओर देखती है। उसके कपोलों पर क्रोध मिश्रित लाज की लाली है।]

रमेश—(हँस कर) क्यों परेशान करती हो बिचारी को नीला ?

नीला—अच्छा जी ! तो अब कान्ता बिचारी भी हो गई ! क्यों री कान्ता ! यह विशेषण कब चुना है ?

[कान्ता मौन रहती है। नीला हँसती हुई कान्ता का हाथ पकड़ कर अपने समीप कोच पर बिठा लेती है। शीला रमेश के पास बैठ जाती है।]

नीला—(हँस कर) मिठाई कब खिला रही हो कान्ता...

शीला—(ताली बजाकर) भाभी !

[रमेश की कान्ता से दृष्टि मिलती है। वह लजा जाती है और सर नीचा कर लेती है।]

रमेश—(शीला की पीठ पर प्यार से चपत लगाते हुये) तुम बहुत शैतान हो !

शीला—शैतान और मैं ? वाह, शैतान तो वहीं रह गये।

रमेश—कहाँ ?

शीला—जहाँ से मैं आई हूँ।

[सब हँसते हैं।]

रमेश—अच्छा भाई, मैं तो चला अजीत की खोज में ! क्यों ठीक

है न नीला ?

[रमेश हँसता हुआ बाहर चला जाता है ।]

कान्ता--(नीला के चुटकी काट कर) अब कहो ।

नीला--(हँस कर) अब क्या हो गया ?

कान्ता--अभी तो कुछ नहीं हुआ पर अब होने वाला है ।

नीला--क्या ?

कान्ता--(हँस कर) अजीत दादा से पूछना ।

नीला--क्या पूछूँ उनसे ? तुम्हारे दादा से मेरा क्या सम्बन्ध ? कौन हैं वे मेरे ?

शीला--मैं बताऊँ ?

कान्ता--नहीं, तुम रहने दो । मैं ही बताती हूँ । (नीला से) दादा तुम्हारे कौन लगते हैं यह तो तुम जानो, पर हाँ, इतना मैं अवश्य जानती हूं कि तुम मेरी छोटी सी, प्यारी सी, भोली सी भाभी लगती हो ।

[शीला और कान्ता हँसती हैं । नीला लजा जाती है । बाहर से अस्त व्यस्त वेश में अजीत आता है । उसके बाल बिखरे हैं; कुर्ता और पैजामा कुछ कुछ फटा है; आँखें लाल हैं; गौर वर्ण है; अवस्था लगभग २५ वर्ष की है । उसे देख कर सब मौन होकर खड़ी हो जाती हैं । वह कुछ क्षण तक सबकी ओर देखता रहता है ।]

अजीत--(कान्ता से) तुम यहाँ कैसे, कान्ता ?

कान्ता--आज नीला का जन्म-दिन है न !

अजीत--तो...?

कान्ता--तो...! हम लोग निमंत्रित हैं दादा !

अजीत--धनी लोगों का जन्म-दिन तो नित्य ही होता है कान्ता, हमें उससे क्या ? रमेश कहाँ है ?

शीला--आपको ही लेने गये हैं । आते ही होंगे । बैठ जाइये !

अजीत--बैठने का न तो मुझे समय है और न अभ्यास । मैं खड़े रहने का अभ्यस्त हूँ ।

शीला--कब तक खड़े रहेंगे आप ? कदाचित उन्हें आने में देर

हो जाये!

अजीत—यदि मैं प्रतीक्षा करना चाहूँ तो घंटों खड़ा रह सकता हूँ। पर प्रतीक्षा करना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैं जा रहा हूँ। चलो कान्ता!

कान्ता—(कातर स्वर में) दादा! आज आप कैसी बातें कर रहे हैं। इस प्रकार चल देना क्या इन लोगों का अपमान करना नहीं होगा?

अजीत—अपमान...? (रुखी हँसी हँस कर) तुम्हें इन लोगों के मानापमान का ध्यान कब से हो गया कान्ता? चलो! यह मेरी आज्ञा है।

नीला—(अत्यन्त विनम्रता से) आज आप अस्वस्थ दिखाई देते हैं। क्या किसी ने आपका निरादर किया है, अपमान किया है?

अजीत—(रूखे स्वर में) निरादर और अपमान तो उनका होता है जो बड़े हैं, जिनके पास धन है, वैभव है, मान है। हम निर्धनों का कैसा मान और कैसा अपमान?

नीला—आप के शब्दों की तीव्रता आप के हृदय का भेद खोल रही है। आज आप अवश्य दुखी हैं। बैठिये, रमेश दादा आते ही होंगे।

[अजीत मन्द गति से टहलता हुआ खिड़की तक आता है। वह निर्निमेष दृष्टि से बाहर की ओर देखता हुआ वहीं खड़ा रहता है। शीला और कान्ता चुपचाप अन्दर चली जाती हैं। नीला धीरे धीरे अजीत की ओर बढ़ती है। नेपथ्य से धीमी धीमी संगीत-ध्वनि उठती है। नीला अजीत से कुछ दूरी पर खड़ी रहती है। अजीत बाहर की ओर और नीला अजीत की ओर देख रही है। एक हाथ में जल का गिलास तथा दूसरे में मिष्ठान की तश्तरी लेकर दबे पाँव शीला आती है। कान्ता पर्दे की ओट से झाँक रही है। जल और मिष्ठान नीला को देकर शीला उसी प्रकार लौट जाती है। नीला धीरे धीरे अजीत की ओर बढ़ती है। संगीत-ध्वनि तीव्र तर हो जाती है।]

नीला—(अजीत के समीप पहुँच कर) यदि आप को बैठने

का अभ्यास नहीं है तो मैं आप से अनुरोध भी नहीं करूँगी। किन्तु···किन्तु आप जलपान तो कर लें।

अजीत--(धीरे धीरे घूम कर नीला की ओर गंभीर दृष्टि से देखते हुये) इस कृपा के लिये अनेक धन्यवाद। मैं जलपान नहीं करूँगा।

नीला--(अधीर स्वर में) क्यों ?

अजीत--(उसी प्रकार देखते हुये) मुझे भूख नहीं है यह कह कर मैं असत्य बोलना नहीं चाहता। मैं भूखा हूँ। कल से मैंने कुछ भी नहीं खाया है। किन्तु फिर भी··· ···।

नीला--फिर भी क्या··· ··· ?

अजीत--फिर भी मैं यह मिठाई नहीं खाऊँगा। जानना चाहती हो क्यों··· ? मैं निर्धन व्यक्ति हूँ। रूखी सूखी तथा मोटी रोटियों का ही मैं अभ्यस्त हूँ। इन रस पूर्ण पदार्थों को खाकर मैं अपना स्वभाव बिगाड़ना नहीं चाहता।

नीला--(गंभीर पर कुछ तीव्र स्वर में) आप मुझे धोखा दे सकते हैं, किन्तु स्वयं को छलने की चेष्टा क्यों करते हैं। यहाँ जलपान न करने का क्या यही कारण है ?

[अजीत सर नीचा कर के टहलता हुआ कौच तक आता है। फिर अचानक मुड़ कर तीव्र स्वर में कहता है।]

अजीत--क्या वास्तविक कारण सुनने का साहस तुम में है ?

नीला--(अजीत की ओर बढ़ते हुये) साहस होने का मान तो मैं नहीं कर सकती पर हाँ, आप जो कुछ भी कहेंगे उसे सुनने और सहन करने की क्षमता अवश्य है।

अजीत--तो सुनो। तुम्हारे यहाँ खाकर मैं तुम्हारा कृतज्ञ होना नहीं चाहता। जानती हो क्यों ? मुझे भय है कि कहीं इस मिष्ठान का रस मेरा मुँह बन्द न कर दे और मैं आने वाले संघर्ष में तुम्हारे पिता का विरोध न कर सकूँ।

नीला--(कुछ क्षण तक गंभीर रह कर मन्द स्वर में) आप का आशय मैं समझती हूँ, परन्तु यह जलपान आप के कर्त्तव्य-पथ पर

शूल बन जायेगा ऐसा मैं नहीं मानती। (वह धीरे धीरे खिड़की की ओर जाती है। फिर अजीत की ओर मुड़ती है। नेपथ्य से संगीत-ध्वनि पूर्ववत है।) किसी और नाते से नहीं तो आप की बहन की सहेली के नाते से ही मैं आप से विनती करती हूँ। आप जलपान कर लें।

अजीत--कदाचित तुम मेरे सूखे अधर, म्लान मुख तथा उदास आँखों पर तरस खा रही हो। नहीं, मैं किसी से दया की भीख नहीं चाहता। यह मलिन वेश ही हम निर्धनों का अमूल्य शृँगार है।

नीला—(अजीत के समीप आकर कातर स्वर में) आप क्यों बार बार मेरी भावनाओं को ठेस पहुँचा रहे हैं ? (उसकी आँखें भर आती हैं तथा स्वर आर्द्र हो उठता है) आज मेरा जन्म-दिन है। उसी के उपलक्ष में यह जलपान·····।

अजीत--(अपेक्षाकृत कोमल स्वर में) पर तुम्हारे जन्म-दिन पर तुम्हें उपहार देने के लिये भी मेरे पास कुछ नहीं है।

नीला—(आवेश में) आप ने भाँति भाँति से मेरे हृदय पर आघात किये, मैं मौन रही। पर··· ··· पर इस प्रकार आप मेरा अपमान करें इसे मैं नहीं सह सकती··· ··· नहीं सह सकती। मैं भिखारिन नहीं हूँ जो उपहारों के लिए झोली फैलाये बैठी हूँ।

[नीला का गला रुँध जाता है तथा आँखों से अश्रु-धार बहने लगती है। संगीत-ध्वनि और भी करुण हो उठती है। गिलास और तश्तरी फर्श पर रख कर वह कोच पर बैठ जाती है और अपने आँचल में मुख छिपा कर फूट फूट कर रोने लगती है। अजीत पल भर मौन भाव से खड़ा रहता है। उसके मुख पर मानसिक द्वन्द के भाव उदित हो रहे हैं। फिर वह धीरे धीरे नीला की ओर बढ़ता है।]

अजीत—(नीला के पास आकर कोमल स्वर में) तुम्हें अपमानित करने का दुस्साहस मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकता। मैं स्वयं अपमानित, पीड़ित, दुखी तथा उपेक्षित हूँ। (उसका गला भारी हो जाता है) सम्भव है इसी लिये मेरे स्वर में कठोरता और तीक्ष्णता आगई हो। मैं क्षमा चाहता हूँ।

[अजीत धीरे धीरे खिड़की की ओर जाता है। नीला मुख उठा

कर आँसू पोंछती है तथा कातर दृष्टि से अजीत की ओर देखती है।]

नीला—(उठ कर अजीत की ओर बढ़ते हुये) आप फिर मेरा अपमान कर रहे हैं।

अजीत—(मुड़ कर) कैसे··· ··· ?

नीला—मुझसे क्षमा माँग कर।

[अजीत न समझने के ढंग से उसकी ओर देखता है।]

नीला—(अजीत के और समीप जाकर) यदि भगवान ही भक्त से क्षमा माँगे तो यह भक्त का परिहास नहीं तो और क्या है ?

[अजीत चौंक कर नीला की ओर देखता है और कुछ देर तक उसी प्रकार देखता है। संगीत-ध्वनि और तीव्र हो जाती है। नीला आँखें नीची कर लेती है।]

अजीत—(गंभीर पर मन्द स्वर में) जो कुछ तुमने अभी कहा उसके अर्थ भी समझती हो तुम··· ··· ?

नीला—यदि न समझती तो कहती ही क्यों··· ··· ?

[संगीत-लहरी और तीव्र होती है। अजीत अपलक नयनों से नीला की ओर देखता है। फिर धीरे धीरे जाकर कोच पर बैठ जाता है। फर्श से तश्तरी उठा कर वह चुप चाप मीठा खाने लगता है। नीला की आँखें प्रसन्नता से चमक उठती हैं। वह आकर दूसरे कोच पर बैठ जाती है। अन्दर से हँसती हुई शीला और कान्ता आती हैं।]

कान्ता—(हँस कर) अभी तक जलपान समाप्त नहीं हुआ दादा।

[अजीत उत्तर न देकर मिठाई खाता रहता है। नीला संकेत से कान्ता को मौन रहने का आदेश देती है। कान्ता अजीत के पास और शीला नीला के पास बैठ जाती है। कमरे में पूर्ण निस्तब्धता है। केवल संगीत-ध्वनि ही सुनाई देती है। किन्तु यह ध्वनि अब करुण न रह कर प्रसन्नता पूर्ण है। नीला उठ कर अन्दर जाती है और तुरन्त एक दूसरी तश्तरी में कुछ मिठाई और लाती है। वह खाली तश्तरी अजीत से लेकर नई तश्तरी उसे दे देती है। अजीत नीला की ओर मौन भाव से देखता है और फिर मिठाई खाने लगता है। कान्ता और शीला कभी अजीत की ओर और कभी नीला की ओर देखती हैं।

नीला अपने स्थान पर बैठ जाती है। तभी बाहर से रमेश आता है।]

रमेश—(हँस कर) अच्छा! मैं तो तुम्हारी खोज में सड़कों की धूल छान रहा हूँ और तुम यहाँ बैठे मिष्ठान उड़ा रहे हो।

अजीत—(जल पीकर) अपना अपना भाग्य है भाई।

[सब हँसते हैं। रमेश कुर्सी पर बैठ जाता है।]

रमेश—(हँस कर) तुम ठीक कह रहे हो अजीत! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि.....।

[अपने वाक्य को अधूरा ही छोड़कर रमेश अर्थपूर्ण दृष्टि कान्ता पर डालता है। वह लजा कर सर नीचा कर लेती है।]

नीला—(हँस कर) क्यों घबरा रहे हैं आप दादा! वह समय भी अब दूर नहीं है।

रमेश—तुम बहुत शैतान हो गई हो नीला। अच्छा, छोड़ो इन बातों को! क्या सुरेश अभी तक नहीं आया?

नीला—आते ही होंगे दादा। हम सब तैयार हैं!

रमेश—ठीक है। मैं भी अभी आता हूँ। चलो अजीत! जरा बाजार हो आयें।

[रमेश और अजीत उठ कर बाहर चले जाते हैं।]

नीला—(हँस कर) आज सँभल कर गाना कान्ता! दादा को रिझाना है।

कान्ता—वे तो वैसे ही रीझे हैं नीला, पर मेरे दादा सहज में रीझने वाले नहीं हैं। उन्हें पाने के लिये कठिन तपस्या करनी पड़ेगी।

नीला—तपस्या तो न जाने कब से कर रही हूँ कान्ता! पर आज.....

कान्ता—आज क्या हुआ नीला—?

नीला—आज..! बताऊँ...?

[वह उठ कर झूमती सी नृत्य करने लगती है तथा गाती है।]

आज नाच ले मन-मयूर तू जीवन में है साज!

जीवन में है साज॥

अब न रहेगा और अकेला;
आई आज मिलन की बेला;
पल भर में तेरे आँगन में;
लग जायेगा सुख का मेला:
झूम झूम कर नाच न पगले;
झूम झूम कर नाच न पगले;
बन मीरा, घनश्याम श्याम को—
चूम चूम कर नाच न पगले;
दुख प्रणय के उमड़े बादल,
हृदय-क्षितिज पर आज !
आज नाच ले मन-मयूर तू,
जीवन में है साज ।
जीवन में है साज ॥

[नीला नृत्य करते करते कोच पर गिर सी पड़ती है। शीला और कान्ता हँसने लगती हैं ।]

कान्ता—(हँस कर) तुम्हारी पूजा तो सफल हो गई नीला ! अब शीला की बारी है । जरा ठीक से नाचना गोरी !

शीला—(हँसती हुई) मुझे किसे रिझाना है बहन हूं जो मैं ठीक से नाचूँ ?

[शीला की रूखी हँसी तथा उसके शब्दों की मार्मिक वेदना छिपी नहीं रहती है ।]

कान्ता—क्यों, सुरेश क्या बुरे हैं ?

नीला—यह क्या कह रही हो कान्ता ? शीला हमारी बहन के समान है । हाँ, यदि शीला मधुप को पसन्द कर तो...

शीला—(गंभीर वाणी में) पसन्द जीवन में केवल एक बार होती है नीला बहन । मैंने जिसे पसन्द किया था वह...।

कान्ता—कहो, रुक क्यों गईं शीला ?

शीला—वह...वह हमें छोड़ कर दूर...दूर देश को चला गया । वह...(गला रुँध जाता है) हमारी रक्षा करते करते सदैव के

लिये !

[वह सिसकने लगती है। शब्द मुँह से नहीं निकल पाते।]

नीला—(शीला की पीठ पर हाथ फेरते हुये) शीला...।

शीला—हाँ बहन ! मेरी इन्हीं आँखों के सामने दुष्ट हत्यारों ने उस वीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये। और...और यह आँखें...यह आँखें आज भी देखती हैं, मैं आज भी जीवित हूँ !

[वह फूट फूट कर रोने लगती है।]

कान्ता—(सान्त्वना देते हुये) धैर्य रक्खो बहन ! परमात्मा की यही इच्छा थी !

नीला—हाँ शीला ! भगवान की यही इच्छा थी। अब रोने से क्या लाभ ?

शीला—रोना तो अब जीवन भर है !

नीला—जीवन एक अमूल्य रत्न है शीला।

शीला—मेरे लिये वह धूल के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

नीला—अतीत को भुलाने की चेष्टा करो शीला। सोचो, तुम्हारे समान अनगिन बालायें होंगी। वे भी तो जीवित हैं, अतीत को भुला कर भविष्य का निर्माण कर रही हैं। अपने लिये नहीं तो अपने पिता जी के लिये ही सही, तुम्हें प्रसन्न रहना चाहिये।

शीला—पिता जी की ममता ही मुझे रोके है अन्यथा मैंने कभी की...!

कान्ता—आत्महत्या करना तो सरल है शीला किन्तु दुख के आँसू पी पी कर भी जीवित रहना कठिन है। तुम वीर हो, कायरता का कार्य करने की इच्छा क्यों करती हो !

नीला—हाँ शीला, तुम्हें हँसना चाहिये।

[शीला मौन रहती है। वह शून्य की ओर एकटक दृष्टि से देखती रहती है।]

कान्ता—(विषय परिवर्तन के विचार से) अच्छा यह तो बताओ शीला कि तुम्हारा जन्म-दिन कब है ?

शीला—(गंभीर तथा उदास स्वर में) जन्म-दिन तो मैं भूल गई

हूँ बहन पर हाँ, मृत्यु-दिन अवश्य याद है।

नीला—(आश्चर्य से) मृत्यु-दिन...!

शीला—हाँ बहन, मृत्यु-दिन ! १५ अगस्त सन ४७ ही हमारा मृत्यु-दिन है।

[कान्ता और नीला विस्मयपूर्ण शोक के साथ शीला के मुख की ओर देखती हैं। बाहर से हँसता हुआ सुरेश आता है। उसके दाहिने हाथ में एक पैकेट है।]

सुरेश—अरे, और सब कहाँ हैं ?

नीला—सब आते ही होंगे भैय्या ! आपके मित्र मधुप जी कहाँ हैं ?

सुरेश—आता ही होगा। ल नीला, तुम्हारे लिये मैं यह साड़ी लाया हूँ।

नीला—(पैकेट हाथ में लेकर) मैं इसे अन्दर रख आऊँ। आप यहीं रहें भैय्या। मैं अभी आती हूँ। (कान्ता का हाथ पकड़ कर) चलो कान्ता !

[नीला और कान्ता अन्दर जाती हैं।]

सुरेश—तुम्हारे पिता जी कहाँ हैं शीला ?

शीला—अन्दर हैं। सो रहे थे, कदाचित अब जाग गये हों।

सुरेश—(समीप जाकर) मेरी उन बातों का बुरा तो नहीं माना तुमने ?

शीला—(सर नीचा करके) बुरा मानने का स्वभाव तो मैं अपने देश में ही छोड़ आई हूँ।

सुरेश—(व्यंग से) अपना देश तुम्हें बहुत प्यारा है ?

शीला—अपना देश सभी को प्यारा होता है।

सुरेश—(उसी व्यंग से) तो फिर छोड़ क्यों आईं अपना देश ? वहीं रहतीं न !

शीला—(कोच से उठ कर गंभीर स्वर में) अपना देश छोड़ आने का कारण जानना चाहते हैं आप ? अपना घर-द्वार, धन-दौलत सब कुछ लुटा कर भी हम वहीं एक कुटिया में रहना पसन्द करते यदि

हमें मान के साथ रहने दिया जाता। किन्तु जब सोने-चाँदी के भूखे उन भेड़ियों को हमने अपने शरीर, अपनी लाज का भी भूखा देखा तो देश छोड़ने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा ही न रहा।

[शीला धीरे धीरे खिड़की तक जाती है। सुरेश विचित्र दृष्टि से उसकी ओर देखता रहता है।]

शीला—(मुड़ कर) किन्तु अपने देश की स्मृति हमारे उजड़े दिलों में आज भी है, आज भी है।

सुरेश—उसकी स्मृति से अब क्या लाभ शीला ?

शीला—यह स्मृति ही अब हमारे जीवन का आधार है।

सुरेश—यह आधार अत्यन्त कोमल है शीला ! जीवन जैसी अमूल्य वस्तु के लिये किसी ठोस तथा दृढ़ आधार की आवश्यकता है। (अपनी जेब से एक छोटा सा डिब्बा निकाल कर उसके अन्दर से हीरे की अँगूठी निकालता है।) खैर, छोड़ो उन बातों को। यह देखो तुम्हारे लिये मैं क्या लाया हूँ।

[अँगूठी देख कर शीला एक पग पीछे हट जाती है। उसके मुख पर घबराहट के चिन्ह हैं।]

शीला—(हकलाते हुये) इतनी बहुमूल्य अँगूठी लेकर मैं क्या करूँगी ?

सुरेश—(हँसकर) क्या किया जाता है अँगूठी का ? पहनना।

शीला—(दृढ़ स्वर में) नहीं, मुझे नहीं चाहिये अँगूठी। आप नीला बहन को दे दें।

सुरेश—पर... पर यह अँगूठी तो मैं तुम्हारे लिये ही लाया हूँ।

शीला—क्यों ? क्यों लाये आप मेरे लिये अँगूठी ?

सुरेश—(आगे बढ़ कर) तुम समझने की चेष्टा क्यों नहीं करतीं शीला ? यह मेरा तुच्छ उपहार है।

शीला—उपहार ? आज मेरा नहीं, नीला बहन का जन्म दिन है।

सुरेश—यह जन्म-दिन का उपहार नहीं शीला, हमारे मधुर मिलन का स्मृति-चिन्ह है।

शीला—(चौंक कर पीछे हटते हुये) मधुर-मिलन का स्मृति-

चिन्ह...?

सुरेश—हाँ शीला ! मैं तुम्हें प्यार जो करता हूँ।

शीला—(घबरा कर) प्यार ?

सुरेश—हाँ, शीला ! क्या तुम मुझे प्यार नहीं करतीं ?

शीला—(तीव्र स्वर में) आपको यह भ्रम कैसे हो गया कि मैं आपको प्यार करती हूँ ?

सुरेश—मेरा परिहास न करो शीला। मैं तुम्हारे प्रेम में पागल हो रहा हूँ। तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। मुझ पर दया करो, तरस खाओ।

शीला—एक मुर्दा किसी के जीवन का आधार कैसे बन सकता है ?

सुरेश—मैं मुर्दे में प्राण फूँक दूँगा शीला। मुझे अवसर तो दो। [सुरेश शीला को पकड़ने के लिये आगे बढ़ता है पर वह पीछे हट जाती है।]

सुरेश—तुम्हें यह आभूषण लेना ही पड़ेगा शीला !

शीला—मेरा धर्म ही मेरा आभूषण है।

सुरेश—इसकी चमक धर्म की आँखों को भी चकाचौंध कर देती है।

शीला—यह आपका भ्रम है। अपने उस सच्चे रत्न को बेच कर मैं इस झूठे पत्थर को मोल नहीं ले सकती। आप मुझसे दूर रहें। मैं... मैं...आपकी बहन के समान हूँ।

[सुरेश क्रुद्ध होकर पागलों की भाँति शीला को पकड़ने दौड़ता है। तभी अन्दर से बशीरचन्द के साथ नीला और कान्ता आती हैं।]

नीला—(हँस कर) यह क्या हो रहा है सुरेश भैय्या ?

सुरेश—(लज्जित होकर] कुछ नहीं नीला ! देखो, तुम्हीं इन्हें समझाओ ! तुम्हारे लिये साड़ी लेने गया था। सोचा, इनके लिये भी कुछ ले चलूँ। यह अंगूठी पसन्द आ गई ! मैं लेता आया। इन्हें दे रहा हूँ, पर यह लेती ही नहीं। कहती हैं, इतनी बहुमूल्य अँगूठी कहीं खो जाये तो !

नीला—(हँस कर) पगली ! खोने के भय से कोई कुछ पहने ही नहीं। ले लो अँगूठी ! सुरेश भैय्या जैसे मेरे भैय्या हैं वैसे ही तुम्हारे भी हैं।

[शीला उसी प्रकार मुख नीचा किये खड़ी रहती है।]

वजीरचन्द—ले लो बेटी ! नीला बेटी कह रही है।

[शीला कातर दृष्टि से अपने पिता की ओर देखती है। उसकी आँखें सजल हैं।]

नीला—(सुरेश से) लाइये, मुझे दीजिये अँगूठी ! मैं पहना दूँगी।

[सुरेश से अँगूठी लेकर नीला शीला की उँगली में पहना देती है। शीला प्रतिमा के समान खड़ी रहती है। बाहर से रमेश, अजीत और मधुप आते हैं। रमेश के हाथ में एक बन्डल है।]

वजीरचन्द—अच्छा भाई ! तुम लोग अब हँसो, गाओ। मैं बूढ़ा तुम बच्चों के बीच में क्या करूँगा ? जाऊँ, तब तक बाजार ही घूम आऊँ !

[हँसता हुआ वजीरचन्द बाहर चला जाता है।]

रमेश—अब किसकी प्रतीक्षा है ? नृत्य-गायन प्रारम्भ हो न !

सुरेश—हाँ भैय्या ! आइये, कोच इत्यादि हटा दें।

[मधुप और सुरेश एक तथा रमेश और अजीत दूसरा कोच हटा कर कोने में कर देते हैं। बीच में पड़ीं कुर्सियाँ भी हटा दी जाती हैं।]

नीला—शीला, तैयार हो न नृत्य के लिये ?

शीला—मेरे सर में पीड़ा है बहन !

सुरेश—(आगे बढ़ कर) औषधि ले आऊँ ?

शीला—रहने दीजिये ! ठीक हो जायेगा।

नीला—(व्यग्रता से) क्यों क्या बात है शीला ? अभी तो ठीक थीं।

शीला—(रूखी हँसी हँसकर) चिन्ता न करो नीला बहन ! कभी कभी ऐसे ही पीड़ा होने लगती है सर में।

नीला—(चिन्तित स्वर में) फिर नृत्य-गान कैसे होगा ?

सुरेश—तुम लोग तो नित्य ही नाचती-गाती हो। आज न सही। मेरे मित्र मधुप ने एक सुन्दर गीत लिखा है इसी अवसर के लिए। क्यों न हम लोग उसी को गायें ?

रमेश—विचार तो ठीक है।

[सब लोग अर्द्ध वृत्त बना कर फ़र्श पर बैठ जाते हैं।]

मधुप—देखिये, मेरे साथ केवल नीला बहन को छोड़ कर सभी लोग गायेंगे।

[मधुप गाता है। अन्य लोग उसका साथ देते हैं और लय के साथ साथ ताली बजाते हैं।

तुम जियो हज़ारों साल रे !
तुम जियो, जियो, जियो रे—
तुम जियो हज़ारों साल रे—
तुम जियो हज़ारों साल !

नित्य प्रभात स्वर्ण-किरणों से
नूतन तव सिंगार कर जाये !
संध्या तारों के मोती से
आकर सदा माँग भर जाये !!

उषा भाल पर बिन्दु लगाये
लेकर कुंकुम थाल रे !

तुम जियो हज़ारों साल रे
तुम जियो, जियो, जियो रे
तुम जियो हज़ारों साल रे
तुम जियो हज़ारों साल !!

जीवन के उपवन में यौवन
का मधुमास सदा लहराये!
प्राणों का पिक मधुर मिलन के
गीत सदा ही मीठे गाये!!

सुख का पंछी नीड़ बनाकर
रहे बसा ये डाल रे!

तुम जियो हज़ारों साल रे!!
तुम जियो, जियो, जियो रे—
तुम जियो हज़ारों साल रे—
तुम जियो हज़ारों साल!!

जब तक नीर रहे गङ्गा में
रहे पवन, सागर लहराये,
रहें गगन-रवि-शशि तब तक यह
शुभ दिन बार बार ही आये!!

कवि गाये नित गीत और—
श्रोता दें गतिमय ताल रे!

तुम जियो हज़ारों साल रे!
तुम जियो, जियो, जियो रे—
तुम जियो हज़ारों साल रे—
तुम जियो हज़ारों साल!!

[गीत की समाप्ति पर सभी तालियाँ बजाते हैं। सुरेश उठ कर कहता है—'नीला' और सब कहते हैं— 'सौ बरस जियें'। यह क्रम तीन बार चलता है। उसके बाद सब लोग हँसते हुये खड़े हो जाते हैं।]

रमेश—(पैकेट उठा कर) मैं तुम्हारे लिए एक बहुत सुन्दर नीली साड़ी लाया हूँ नीला !

नीला—(हँस कर) केवल साड़ी ही लाये दादा ?

रमेश—नहीं जी, साथ में ब्लाउज के लिये टुकड़ा भी है।

[सब हँसते हैं।]

रमेश—इसे रख आऊँ तुम्हारे कमरे में या देखोगी ?

नीला—नहीं, आप रख आइये।

[रमेश अन्दर जाता है।]

मधुप—इस अकिंचन कवि तथा भूखे राष्ट्र-निर्माता के पास तुम्हें उपहार में देने योग्य कोई भी वस्तु नहीं है नीला बहन ..... !

नीला—(बीच में ही) आपका आशीर्वाद ही काफ़ी है।

मधुप—युग युग जियो बहन !

कान्ता—(मधुप से) एक बात पूछूँ कविजी ?

मधुप—अवश्य !

कान्ता—अभी अभी आपने अपने को भूखा राष्ट्र-निर्माता बताया है। मैं आपका आशय समझ न सकी।

मधुप—(बीच में ही हँसते हुये) ओह, यह बात है। सुनिये, मैं एक स्थानीय विद्यालय में अध्यापक हूं। महीनों बीत जाते हैं पर वेतन का नाम नहीं आता। हम भूखे रह कर अपना कार्य करते हैं। हम शिक्षक हैं, देश के भावी नागरिकों के निर्माता हैं, हम से यह आशा की जाती है कि हम एक नये युग का सृजन करेंगे, विद्यार्थियों में नूतन आदर्शों की स्थापना करेंगे।

अजीत—बात तो ठीक है। शिक्षकों का कार्य अत्यन्त उत्तर-दायित्व पूर्ण है।

मधुप—ऐसे उत्तरदायित्व को लेकर हम क्या करें ? हम भी तो मनुष्य हैं, हमारे भी पेट है, अपने परिवार के प्रति भी तो हमारा कुछ कर्त्तव्य है। समाज हमें अजायबघर का छूटा हुआ जानवर समझता है। जब तक हमें पेटभर भोजन नहीं मिलता, समाज से समान व्यवहार नहीं मिलता, सुविधायें नहीं मिलतीं, तब तक हम क्या कर सकते हैं ?

नीला—वेतन न देना तो सरासर अन्याय है। इसका विरोध क्यों नहीं करते आप लोग ?

मधुप—क्या करें ? साठ रुपये मिलते हैं पर रसीद देनी पड़ती है पूरे सौ की। वह भी हर महीने नहीं मिलते। यदि माँग करते हैं तो निकाल देने की धमकी दी जाती है।

कान्ता—तब आप लोगों का काम कैसे चलता होगा ?

मधुप—हम में से अधिकतर अवकाश के समय में कुछ न कुछ काम करते हैं। कोई ट्यूशन करता है, कोई किताबों की दूकान ही खोल लेता है, कोई किसी व्यापारी के यहाँ घंटे-दो-घंटे चिट्ठी-पत्री का काम ही कर लेता है। ऐसी दशा में पढ़ाने में ध्यान कैसे लग सकता है ? यही कारण है कि शिक्षा का स्तर गिरता ही जारहा है।

अजीत—स्वतंत्र भारत के शिक्षकों की ऐसी दशा ? देश का भविष्य..... !

मधुप—(बीच में ही) केवल अन्धकार ही है। (सुरेश की ओर मुड़ कर) अच्छा सुरेश अब आज्ञा दो।

सुरेश—मैं भी चल रहा हूँ मधुप। कुछ आवश्यक परामर्श करना है।

[दोनों द्वार की ओर बढ़ते हैं।]

नीला—जलपान तो कर लेने दीजिये मधुप जी को।

सुरेश—तुम चिन्ता न करो। मैं रेस्ट्राँ में करा दूँगा जलपान।

[दोनों बाहर चले जाते हैं।]

शीला—(अँगूठी उतार कर नीला की ओर बढ़ाती हुई) तुम्हारी ही वस्तु तुम्हें उपहार में देरही हूं नीला बहन ! बुरा न मानना ! मेरे पास.....मेरे पास.....इसके अतिरिक्त.....।

[शीला का गला भर आता है।]

नीला—(शीला को हृदय से लगाते हुये) पगली कहीं की ! कहीं छोटी बहनें भी उपहार देती हैं बड़ी बहनों को। पहनो अँगूठी !

[शीला अँगूठी पहनती हुई सर नीचा करके मन्दगति से अन्दर चली जाती है। अजीत चुप चाप जाकर खिड़की के पास खड़ा हो

जाता है।]

कान्ता—(अपनी कंचुकी से एक छोटा सा सुन्दर चित्र निकाल कर नीला की ओर बढ़ाती हुई) मेरा उपहार है तो छोटा पर है बहुमूल्य।

नीला—(चित्र लेकर अजीत की ओर देखती हुई) जानती हूं।

कान्ता—(हँसकर) इसे संभाल कर रखना रानी।

नीला—इसे मैं हृदय के समीप रक्खूँगी बहन!

[नीला चित्र को कंचुकी में रख लेती है। कान्ता नीला के चुटकी लेकर हँसती हुई अन्दर चली जाती है। कमरे में केवल अजीत और नीला रह जाते हैं। नीला धीरे धीरे अजीत की ओर बढ़ती है। नेपथ्य से संगीत की मन्द ध्वनि आती है। अजीत घूम कर नीला की ओर देखता है।]

अजीत—(आर्द्र स्वर में) क्या दूँ उपहार में तुम्हें? इस शरीर को छोड़कर और .....और कुछ भी तो नहीं है मेरे पास जिसे.....जिसे मैं अपना कह सकूँ .....! मैं .....मैं.....।

नीला—(अजीत के चरणों पर झुककर भीगे स्वर में) मुझे उपहार नहीं आशीर्वाद दीजिये कि मैं जीवन भर इन चरणों की सेवा कर सकूँ।

[अजीत नीला को उठा लेता है।]

अजीत—आशीर्वाद देने की क्षमता तो मुझ में नहीं है नीला, पर.....

नीला—पर.....?

अजीत—पर परम पिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि तुम्हें दीर्घायु प्रदान करे। बस यही कामना है कि तुम सौ बरस जियो।

नीला—इतनी लम्बी आयु लेकर मैं करूँगी क्या? मैं तो यही चाहती हूं कि मेरे प्राण अभी यहीं आपके चरणों में निकल जायें।

अजीत—(गंभीर स्वर में) तुम्हारे शब्द मुझे जीवन भर याद रहेंगे। मैं श्रमिक, हूं कवि नहीं। इसलिये अपने भावों को व्यंजित करने के लिए मेरे पास उपयुक्त शब्दों का अभाव है। पर हां, मैं तुम्हें वचन

देता हूं कि तुम्हारे प्यार के साथ कभी विश्वास घात नहीं करूँगा।

[अजीत का गला भर आता है। नीला की आँखों में भी अश्रु झलकने लगते हैं।]

नीला--(आर्द्र स्वर में) मेरी मनो कामना पूर्ण हुई। आज..... आज मेरी मूक साधना सफल हुई।

[अन्दर से हँसती हुई कान्ता और शीला का प्रवेश। उनके साथ रमेश भी है।]

रमेश--अरे! अभी कोच इत्यादि ठीक नहीं किये गये? कहीं पिताजी आगए तो सर पर आकाश उठा लेंगे।

अजीत--अभी होते हैं एक मिनट में।

रमेश--सुरेश कहाँ गया?

नीला--वे मधुप के साथ बाहर गए हैं। आपही कहें दादा, क्या उनको इस प्रकार जाना चाहिए था?

रमेश--(हँस कर) उसके सब काम विचित्र हैं। (अजीत की ओर मुड़ कर) आओ ज़रा सहारा दो।

[रमेश और अजीत मिल कर कोचों को यथा स्थान रख देते हैं। वे दोनों एक कोच पर तथा कान्ता, नीला और शीला दूसरी कोच पर बैठ जाती हैं।]

रमेश--मधुप को जलपान भी नहीं कराया तुमने नीला?

नीला--क्या करती, वे तो जैसे पवन के घोड़े पर सवार थे। जब कहा तो सुरेश भैय्या कहने लगे कि रेस्ट्राँ में करा देंगे।

रमेश--(हँसकर) यह भी खूब रही। अच्छा, और लोग तो कर चुके हैं जलपान?

नीला--(हँसते हुए) ओह, अब समझी! क्षमा करना दादा भूल हो गई थी मुझ से! अभी लाती हूँ।

[नीला उठ कर अन्दर जाने का उपक्रम करती है।]

कान्ता—नीला बहन, रहने दो जलपान! मुझे अभी भूख नहीं है।

नीला—(मुड़ कर) तुम्हारे लिए कौन लारहा है? क्या दादा

तुम्हारे अतिरिक्त किसी और के लिए नहीं कह सकते ?

[कान्ता लजा जाती है । नीला और शीला हँसने लगती है ।]

रमेश—रहने दो नीला ! देख लिया कि तुम अपने अतिथों का कितना ध्यान रखती हो !

नीला—मैं अभी लाई दादा ।

रमेश—(हँसकर) बैठ जाओ ! हम लोग अन्दर जलपान कर चुके हैं ।

नीला—(कोच पर बैठते हुये) ओह तो यह बात है ।

[सब हंसते हैं । अर्जात अपेक्षा कृत गंभीर रहता है । बाहर से सेठ जी आते हैं । उनके बाएँ हाथ में एक डिब्बा है । उन्हें देख कर सब खड़े हो जाते हैं ।]

सेठ जी—कहो अर्जात, अच्छे तो हो ?

अर्जात—(व्यंग से) आप की कृपा से !

सेठ जी—(व्यंग पूर्वक) मेरी कृपा प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म के पुन्य चाहिए अर्जात !

अर्जात—जी हाँ ! और इस जन्म के पाप ।

सेठ जी—(कठोर स्वर मे) अर्जात !

अर्जात—(तीव्र स्वर में) सेठ जी !

सेठ जी—शिष्टता से बात करो । तुम मेरे सेवक हो ।

अर्जात—यदि स्वामी और सेवक का सम्बन्ध ही आप के झूठे अभिमान का कारण है तो.....तो आप की नौकरी से मैं अभी इसी समय त्याग-पत्र देता हूँ । अब न आप स्वामी हैं और न मैं सेवक ! हम दोनों मनुष्य हैं अब—मनुष्य, केवल मनुष्य ।

सेठ जी— (क्रुद्धस्वर में) जिसका खाते हो उसी के मुँह लगते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

रमेश—पिताजी ! यह आप क्या कर रहे हैं । अतिथि का अपमान करना उचित नहीं !

सेठ जी—चुप रहो तुम ! कुत्तों को जितना खिलाओगे उतना ही वे भौंकेंगे !

अजीत—(आवेश में) यह तो समय ही बतायेगा कि कुत्ता मैं हूँ या आप !

सेठ जी—नीच ! कमीने ! तुझे शर्म नहीं आती इस प्रकार बात करने में। मेरे ही घर में..... ।

अजीत—(बीच में ही) शर्म आये उसे जो पाप की कमाई खाता हो, चोर बाज़ारी करता हो, शर्म.....।

नीला—(बीच में ही) अजीत..... ।

अजीत—चुप रहो तुम ! तुम्हारे मिष्ठान का रस मेरा मुँह बन्द नहीं कर सकता ! मुझे जो कहना है वह कह कर रहूँगा। (सेठ जी की ओर मुड़ कर) शर्म आये उसे जो चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपनी आत्मा बेचता हो, पैसे की प्यास बुझाने के लिए पशु बन जाता हो। मुझे क्यों शर्म आये ? दिन भर काम करके वेतन लेता था, कोई दान नहीं लेता था मैं।

[क्रोध और आवेश के कारण अजीत काँपने लगता है। सब लोग भीत दृष्टि से कभी सेठजी की ओर और कभी अजीत की ओर देखते हैं।]

सेठजी—(क्रोध से काँपते हुये) छोटा मुँह और इतनी बड़ी बात !

अजीत—छोटों की शक्ति को कम न समझिये सेठजी ! एक छोटीसी चिनगारी बड़े बड़े महलों को भस्म कर देती है। अब वह समय गया जब बड़े छोटों को दबा लेते थे, उन पर मन माने अत्याचार करते थे, उनका रक्त चूसते थे। आज .... !

सेठजी—(बीच मे ही चीख़ कर) अजीत !

अजीत—इस प्रकार चीख कर आप मुझे डरा नहीं सकते सेठजी ! आज हम छोटों के हृदय में विद्रोह की वह भयंकर आग सुलग रही है जो शीघ्रही ज्वालामुखी बन कर फूट पड़ेगी और उसमें बड़ों के साथ उनके बड़े बड़े पाप भी भस्म हो जायेंगे।

सेठजी—(आगे बढ़कर) कमीने, नीच ! मेरे ही घर मे मेरा अपमान ! ठहर तो..... ।

[मारने के लिये हाथ उठाते हैं।]

नीला—पिताजी..... !

सेठजी—चुप रहो तुम ! मैं इसे अभी मज़ा चखाता हूँ। (तीव्रस्वर में) रामू ! रामू ! निकालो इसे अभी धक्के देकर !

अजीत—धक्के देकर निकलवाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी सेठ जी ! मैं स्वयं जारहा हूँ पर इतना स्मरण रहे कि आपका कोई कुकर्म मुझसे छिपा नहीं है। आप हड़ताल क्यों करवाना चाहते हैं यह भी मैं जानता हूँ। पर मैं.....मैं हड़ताल नहीं होने दूँगा—नहीं होने दूँगा चाहे उसके लिये मुझे अपने प्राणों की बलि ही क्यों न देनी पड़े।

सेठजी—जा, जा ! बड़ा आया है प्राणों की बलि देनेवाला।

अजीत—जाने से पहले एक बात और भी कह दूँ। काग़ज़ की नाव एक न एक दिन डूबती ही है, पाप का घड़ा एक न एक दिन फूटता ही है। और.....और वह दिन अब दूर नहीं है। (कान्ता का हाथ पकड़ कर) चलो कान्ता, चलें। मेरे कहने से यदि तुम पहले ही चलदेतीं तो आज अपना इस प्रकार अपमान न होता।

[दोनों द्वार की ओर बढ़ते हैं।]

रमेश—अजीत, ठहरो, रुको !

अजीत—(मुड़कर) रुकने का दूसरा नाम मृत्यु है रमेश ! अजीत मरना नहीं जीना जानता है और वह भी मान के साथ।

[तीव्र गति से दोनों बाहर चले जाते हैं।]

नीला—(आर्द्र स्वर में) पिताजी..... आप.....

सेठजी—(बीच में ही क्रुद्ध होकर) चुप रहो सब लोग। मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। अजीत मेरा शत्रु है। सुनलो, कान खोल कर सुनलो। आज से अजीत या उसकी बहन इस घर में न आयें। यह मेरी आज्ञा है।

रमेश—यह आज्ञा तो अनुचित है पिताजी !

नीला—आप इस पर फिर विचार करें।

सेठजी— (बिगड़ कर) तुम लोगों ने मुझे मूर्ख समझ रक्खा है क्या? मैं जो कुछ करता हूँ समझ-बूझ कर !

रमेश—पिताजी—!

सेठजी—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता ! यह मेरा घर है और जब तक मैं जीवित हूँ तब तक मेरी आज्ञा चलेगी। समझे तुम लोग ! आज से मैं उन दोनों में से किसी को भी यहाँ न देखूं !

[सेठजी तीव्रगति से अन्दर चले जाते हैं। नेपथ्य में करुण संगीत की ध्वनि आती है।]

नीला—(रमेश के पास जाकर करुण स्वर में) दादा !

रमेश—(नीला के सर पर स्नेह से हाथ फेरते हुये) नीला, धैर्य रक्खो।

नीला—(कातर होकर) दादा ! क्या.....क्या अब वे यहाँ..... यहाँ.....कभी न आ सकेंगे।

रमेश—(दृढ़ स्वर में) नहीं नीला ! वे लोग अवश्य आयेंगे..... अवश्य आयेंगे ! हम.....हम पिताजी की इस अनुचित आज्ञा का भरसक विरोध करेंगे !

[नीला की आँखें भर आती हैं। वह रमेश के कन्धे पर अपना सर टिका देती है। शीला उन दोनों की दृष्टि बचा कर अपने आँसू पोंछती है। धीरे धीरे यवनिका गिरती है।]

तृतीय अङ्क

स्थानः— वही ड्राइङ्ग रूम ।

समयः— सन्ध्याकाल ।

[रामू झाड़न से कमरे का सामान स्वच्छ कर रहा है। वह घुटनों तक धोती और एक बन्डी पहने है। सफाई करके वह खिड़की से बाहर की ओर झांकता है। फिर बाहर के द्वार की ओर जाकर उसका पर्दा हटाकर बाहर देखता है। उसके बाद वह आराम से कोच पर बैठ जाता है और जेब से एक अधजली बीड़ी निकाल कर उसे जलाता है। बाहर के द्वार का पर्दा हटाकर मधुप आता है। मधुप को देखकर रामू झटपट कोच से उठने की चेष्टा करता है। शीघ्रता के कारण वह मुँह के बल फ़र्श पर गिर पड़ता है। मधुप हँसता हुआ कोच पर बैठ जाता है।]

मधुप—सुरेश बाबू कहाँ हैं रामू ?

रामू—(उठकर मधुप के पैरों के पास बैठते हुये) मालिक अन्दर हैं सरकार ! हुजूर ! आज बड़ी भूल हुइ गई। अब कबौं नही हुइयै। छोटे मालिक से न कहियौ सरकार ! मैं आपके पैर पड़ूं !

[रामू मधुप के पैर दाबने लगता है। मधुप हँसकर पैर हटा लेता है।]

मधुप—नहीं कहूंगा रामू ! अच्छा यह तो बताओ, तुम्हारा घर कहां है।

रामू—घर-बाहर जो है सो अब यहै है सरकार !

मधुप—क्यों, तुम्हारी शादी नहीं हुई क्या ?

रामू—सादी भागमानन की होत है मालिक ! अपने ऐसे भाग कहाँ जो कोई अपनी बिटिया हमका दय ! आपकी सादी हुइ गई सरकार ?

मधुप—हम भी तुम्हारी तरह अभागे हैं रामू ! शादी तो दूर, आज तक किसी लड़की ने मुझे प्यार की दृष्टि से भी नहीं देखा।

रामू—अभै आपकी उमरियै का है ! हमकाँ देखो ! पचास के हुइ गयै पर अभऊं सादी करै का इरादा है।

मधुप—क्यों क्या कोई लड़की पसन्द कर ली है रामू ?

रामू—लड़की नहीं मेहरारू कहौ मालिक मेहरारू। विधवा है। दुइ बच्चौं हैं।

मधुप—तब तो ठीक है। तुम्हें बिना श्रम किये दो बच्चे मिल जायेंगे और हजारों ऐसे हैं जिन्हें जीवन भर दर्शन नहीं होते बच्चे के।

रामू—हम तौ समझ लीन सरकार कि हमका दहेज माँ लरिकै मिल गये।

मधुप—तुम बड़े भाग्यवान हो रामू ! तुम्हें स्त्री और बच्चे दोनों मिल गये पर (ठन्डी साँस लेकर) हमें न स्त्री मिली न बच्चा ! भगवान न जाने कभी कोई स्त्री मुझे "पतिदेव", "प्राणनाथ" "स्वामी" कहकर बुलायेगी या नहीं और कभी कोई बच्चा मुझे

अपनी तुतली भाषा में "पिता-दी", "पिता दी" भी कहेगा या नहीं।

रामू—(हाथ ऊपर उठाकर) बा पै भरोसा रक्खौ मालिक! कबौं आपहू की सुन है।

[मधुप हंसने लगता है। अन्दर से सुरेश आता है। रामू भीत दृष्टि से उसकी ओर देखकर चुपचाप अन्दर चला जाता है।]

सुरेश—(बैठते हुये) कहो मधुप कब आये?

मधुप—अभी आया हूं। तुम सुनाओ, कहाँ तक पहुंचे?

सुरेश—(हंसते हुये) जहाँ थे, वहीं हैं यार! लड़की बड़ी दुष्ट हुई विदित होती है। हाथ ही नहीं रखने देती।

मधुप—मुझे तो मित्र वह सीधी मालूम देती है। मेरी राय तो यह है कि तुम उसका पीछा छोड़ दो!

सुरेश—आजतक मैंने कभी किसी लड़की से हार नहीं मानी है मधुप! बड़ी बड़ी तेज़-तर्रार लड़कियों को इन्हीं चरणों पर झुकाया है मैंने! यह कौन चीज़ है!

मधुप—मैंने उन सब लड़कियों को देखा है सुरेश, जिन्हें तुमने अपने चरणों पर झुकाया है और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि वे तुमसे पहले और न जाने किस किस के चरणों पर झुक चुकी होंगी! शीला उन लड़कियों में नहीं है सुरेश!

सुरेश—तुम भूलते हो मधुप! ऊपर से भिन्न मालूम पड़ने पर भी सब लड़कियाँ अन्दर से एक ही होती हैं। अन्तर केवल इतना है कि कुछ शीघ्र झुक जाती हैं और कुछ मानिनी होती हैं। शीला मानिनी है, पर झुकेगी वह भी—आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों!

मधुप—कुछ लड़कियाँ ऐसी भी होती हैं सुरेश जो टूटकर बिखर जाती हैं पर झुकती नहीं

सुरेश—तुम्हें लड़कियों के विषय में इतना ज्ञान कैसे हो गया मधुप? मुझे आश्चर्य है!

मधुप—आश्चर्य की इसमें कोई बात नहीं है सुरेश! तुमने नारी को केवल एक रूप में देखा है और वह भी वासना की आंखों से पर मैंने—मैंने उसे माँ, बहन और सखा के रूप में भी देखा है।

सुरेश—और मैंने भी चार वर्ष लखनऊ में रहकर भाड़ नहीं झोंका है मधुप ! उड़ती चिड़िया के पर गिन सकता हूँ !

मधुप—मानता हूँ ! पर इस बार तुमने भूल की है सुरेश ! जिसे तुम चिड़िया समझ रहे हो वह साधारण चिड़िया नहीं, चातकी है चातकी जो प्यासी मर जायगी पर तुम्हारे सोने के प्याले में भरा अमृत नहीं पियेगी !

सुरेश—तुम एक चातकी लिये फिरते हो मधुप ! मैंने न जाने कितनी राजमरालिनों को चाँदी की गोलियाँ चुगाई हैं।

मधुप—यह तुम्हारा भ्रम है सुरेश ! वे राजमरालिनी नहीं साधारण बतखें रही होंगी !

सुरेश—(हँसकर) पागल हो तुम। मैं कच्ची गोली नहीं खेलता मधुप ! अच्छा, छोड़ो इन बातों को ! चलो, चल रहे हो पीने ?

मधुप—नहीं ! मैंने पीना छोड़ दिया।

सुरेश—(व्यङ्ग से) अच्छा ! कब से ?

मधुप—१५ अगस्त से।

सुरेश—(हँसकर) वाह रे राष्ट्रप्रेमी ! अब तो भारत स्वतन्त्र हो गया है। जी खोलकर पियो और मौज करो !

मधुप—हमारी सरकार तो नशेबन्दी के पक्ष में है। यहाँ भी तो बन्द है। तुम लोगों को मिल कहाँ जाती है, मेरी तो यही समझ में नहीं आता।

सुरेश—वैसे तो सोलह रुपये खर्च करने से परमिट मिल जाता है। पर मुझे उसकी भी क्या आवश्यकता है ? बन्दी तो नाममात्र की है। अब भी धड़ल्ले से बोतलें खुलती हैं होटलों में।

मधुप—आश्चर्य है। पुलिस और आबकारी वाले कुछ नहीं करते ?

सुरेश—वे स्वयं आकर वहां पीते हैं। और फिर उन्हें मासिक वेतन जो मिलता है। चांदी के जूते की मार बहुत बुरी होती है मधुप !

मधुप—(विकृत स्वर में) चाँदी का जूता..... ! थू..... !

सुरेश—तुम तो सन्यास ले लो मधुप ! अच्छा शीघ्र बोलो, चल रहे

हो या नहीं ?

मधुप—नहीं !

सुरेश—तुम्हारी इच्छा !

[सुरेश "साकी शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर, या वह जगह बता दे जहाँ पर खुदा न हो ।" गाता हुआ बाहर चला जाता है। मधुप वहीं बैठा रहता है। अन्दर से शीला आती है।]

शीला—(मधुप को देखकर) ओह, आप ?

मधुप—(खड़े होते हुये) जी हाँ, मैं हूं शीला देवी ! मुझे आपसे कुछ कहना है।

शीला—(आश्चर्य से) मुझसे ? कहिये !

मधुप—मैं आपको साधारण युवतियों से ऊपर.....बहुत ऊपर एक देवी के रूप में देखता हूँ। आपमें यदि रति और रम्भा का रूप है तो काली और दुर्गा की शक्ति भी है, ऐसा मेरा विश्वास है। देखना मेरे इस विश्वास की भीति में कोई चोर सेंध न लगा दे। बस, यही कहना है मुझे आपसे।

[मधुप विद्युतवेग से बाहर चला जाता है। शीला चकित सी खड़ी रहती है। अन्दर से नीला आती है।]

नीला—क्या सोच रही हो शीला ?

शीला—कुछ नहीं। ऐसे ही खड़ी हूँ।

[नीला मन्द गति से खिड़की के समीप जाती है और कुछ क्षण तक बाहर की ओर देखती रहती है।]

नीला—(शीला की ओर मुड़कर निश्वास छोड़ते हुए) क्या अब वे यहाँ कभी न आयेंगे ?

शीला—(समीप जाकर) भगवान पर भरोसा रक्खो बहन !

नीला—भगवान ? क्या वह इस दुखिया पर दया करेगा ?

शीला—क्यों नहीं ! और फिर रमेश दादा भी तो हैं। वे पिताजी की आज्ञा का विरोध करेंगे !

नीला—विरोध तो मैं भी करूँगी। पर.....पर.....!

शीला—प्यार के पथ में 'पर' का काम नहीं है नीला बहन !

नीला—शीला, मेरा हृदय कह रहा है कि वे अवश्य आयेंगे !

शीला—ऐसा ही होगा। मेरी तो परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिन शीघ्र आये जब अजीत जी बारात लेकर आयें और.....और मैं तुम्हारा श्रृङ्गार करूँ, तुम्हें दुलहन बनाऊँ !

नीला—हृदय के एकान्त कोने में कामना तो मेरी भी यही है शीला पर....पर वह दिन कभी न आयेगा.....कभी न आयेगा। पिताजी... पिताजी का कठोर हृदय.....! ओह !

शीला—कठोरता में भी कोमलता छिपी होती है नीला बहन ! पिताजी अवश्य मान जायेंगे। सच्चा प्यार अवश्य विजयी होगा।

[बाहर से सेठ जी आते हैं ! नीला और शीला अन्दर चली जाती हैं। सेठ जी उन्हें नहीं रोकते। वे कोच पर बैठ जाते हैं। उनके मुख पर चिन्ता की रेखायें हैं। मस्तक को दोनों हाथों से दाबे कुछ देर तक बैठे रहते हैं फिर उठकर व्यग्रता से कमरे में इधर उधर टहलने लगते हैं। सहसा जैसे कुछ निश्चय करके कोच पर बैठ जाते हैं और फोन उठाकर नम्बर मिलाते हैं।]

सेठजी—हाँ, मोहनलाल बोल रहे हो न ? ठीक है। हाँ तो उस अजीत के क्या हाल हैं ? क्या कहा, हड़ताल का बराबर विरोध कर रहा है ? देखो, हड़ताल तो होनी ही चाहिये ! उसे प्रलोभन दो। हाँ, मैं अभी एस० पी० साहब को फोन कर रहा हूँ ! अच्छा, अमरनाथ का काम कैसा चल रहा है ? वह जी जान से प्रयत्न कर रहा है ! ठीक है। तुम अभी यहाँ चले आओ। और हाँ, अमरनाथ से भी आने के लिये कह देना। जेलखाना नहीं तो शफाखाना तो खुला ही है। अजीत को वहीं पहुंचाना होगा। मेरे अपमान का प्रतिशोध भी हो जायेगा और हड़ताल भी हो जाएगी। समझ गए न ? ठीक है ! अभी आओ !

[सेठ जी फोन रखकर फिर उठाते हैं और दूसरा नम्बर मिलाते हैं।]

सेठ जी—हलो ! मानिकलाल बोल रहा हूँ ! आपके तो अब दर्शन ही नहीं होते सिंह साहब ! व्यस्त रहते हैं ? रहना ही चाहिए ! अच्छा, थोड़ा कष्ट देना है आपको। कोई विशेष बात नहीं है।

हमारे मिल में एक नेता है। हाँ, हाँ वही अर्जीत! मैं चाहता हूँ आप उसे दो चार दिन के लिये बन्द करदें! क्या कहा. आप अकारण बन्द नहीं कर सकते? अरे साहब, आप चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं! उसने मेरा अपमान किया है। जी, क्या कहा? नहीं साहब मैं हर सेवा के लिये प्रस्तुत हूँ। जी आप विवश है? अरे, क्यों परिहास कर रहे हैं आप! जी, क्या कहा, अब भारत स्वतन्त्र है और आपके हाथ .....! अर्जी छोड़िये इन बातों को! भारत जैसा स्वतन्त्र है वह आप भी जानते हैं और हम भी जानते हैं। किस प्रकार भी हो आपको यह काम तो करना ही होगा। जी, किसी भी मूल्य पर आप किसी के मूल अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते? मूल अधिकार.....! हा.....हा.....हा... ! आपके अधिकारों की तुलना में उनका क्या मूल्य! जी आप अर्जीत को बन्द नहीं कर सकते! किसी प्रकार भी नहीं? ठीक है। अच्छा नमस्ते।

[सेठ जी भुँझलाकर फोन रख देते हैं फिर उठकर टहलने लगते हैं और खिन्न स्वर में बुदबुदाते हैं।]

सेठजी—बन्द नहीं कर सकता! भारत स्वतन्त्र हो गया है। धूर्त कहीं का! लाखों चूहे खाकर बिल्ली हज को चली है। देख लूँगा तुझे भी। स्थानान्तरित न कराया तो मेरा नाम भी मानिकलाल नहीं!

[सेठ जी कौंच पर बैठ जाते हैं। क्रोध से उनका मुख लाल है। मोहनलाल का प्रवेश। वह आकर कुर्सी पर बैठ जाता है।]

सेठ जी—एस० पी० साहब स्वतन्त्रता की दुहाई देकर बच रहे हैं। हज़ारों-लाखों की घूस खाकर आज धर्मात्मा बने हैं। बिना कारण अर्जीत को बन्द नहीं कर सकते। मोहनलाल! अब वही करना होगा जो मैं पहले कह चुका हूँ। अर्जीत के बच्चे को नीचा दिखाना ही है। उसका इतना साहस कि मेरे ही घर में मेरा अपमान करे! अमरनाथ को आने का आदेश दे दिया है?

मोहनलाल—जी, सेठ जी! वह आता ही होगा। अर्जीत बहुत बढ़ गया है!

सेठ जी—हाँ! जब चींटी मरने को होती है तो उसके पर उग आते

हैं मोहनलाल ! अजीत का अन्त अब निकट है ।

मोहनलाल—जी, खेद तो यही है कि मैं न हुआ नहीं तो वह हाथ मारता, वह हाथ मारता.....!

[वह इतने वेग से अपना हाथ चलाता है कि कोच से नीचे लुढ़क जाता है । सेठ जी हँसने लगते हैं । वह सँभल कर उठता है, अपने वस्त्र झाड़ता है और लज्जित होकर फिर कोच पर बैठ जाता है ।]

सेठजी—(हँसते हुये) हाँ तो वह हाथ मारते—वह हाथ मारते ।

मोहनलाल—(लजा कर हाथ मलते हुये) जी !

सेठजी—तुम से एक बार नहीं दस बार कहा मैंने कि अपनी "जीजी" घर पर ही छोड़ आया करो पर तुम हो कि मानते ही नहीं, सुनते ही नहीं !

मोहनलाल—जी ! मेरी जीजी तो जाने कब की मर गई सेठजी !

सेठजी— मर गई ? चलो अच्छा हुआ ! अब न कहा करो "जी" "जी" !

मोहनलाल —जी !

[सेठजी हँसने लगते हैं । पहले तो मोहनलाल लजा जाता है फिर वह भी खुल कर हँसने लगता है । दोनों कुछ देर तक हँसते रहते हैं ।]

सेठजी —(हँसना बन्द करके) तुम भी एक ही आदमी हो मोहनलाल !

मोहनलाल— जी ! आपकी कृपा है !

[बाहर से अमरनाथ का प्रवेश ।]

सेठजी—आओ अमरनाथ ! काम कैसा चल रहा है ?

अमरनाथ—आपकी कृपा से ठीक चल रहा है सेठजी ! पर...

सेठजी— पर क्या ?

अमरनाथ —पर अजीत के कारण बना बनाया खेल बिगड़ा जारहा है । वह श्रमिकों को घर घर जाकर समझाता है, हड़ताल का विरोध करता है ।

सेठजी— हूँ !

[सेठजी कुछ देर तक गंभीरमुद्रा में कुछ सोचते रहते हैं। अमरनाथ उनकी ओर देखता हुआ उसी प्रकार खड़ा रहता है।]

सेठजी—जिस तरह भी हो हड़ताल को सफल बनाना ही है अमरनाथ! यह लो (जेब से सौ सौ के दस नोट निकाल कर देते हुये) पहले अजीत को मोल लेने की चेष्टा करो और यदि वह फिर भी न माने तो वही करो जो तुम्हें मैनेजर साहब बता चुके हैं। समझे! यह मेरे मान का प्रश्न है।

अमरनाथ—(नोट जेब में रखते हुये) समझ गया सेठ जी! आप के मान के लिए हम अपना खून पानी एक कर देंगे! आप निश्चिन्त रहें।

[अमरनाथ तीव्र गति से बाहर चला जाता है। सेठजी फिर ध्यान में डूब जाते हैं।]

सेठजी—(सर उठा कर) मोहनलाल! माल लद गया?

मोहनलाल—जी लद रहा है सेठजी! रात तक लद जायेगा।

सेठजी—गाड़ी छूटेगी कब?

मोहनलाल—जी सात बजे!

सेठजी—तो जाओ, जब तक गाड़ी चली न जाये तुम स्टेशन पर ही रहो। वहाँ से कहीं हटना मत!

मोहनलाल—जी सेठजी!

[मोहनलाल उठ कर बाहर चला जाता है। सेठ जी फिर विचार मग्न हो जाते हैं। बाहर से मनमोहन आता है।]

मनमोहन—(सेठजी को चिन्तित देख कर) किस चिन्ता में हैं सेठजी?

सेठजी—(चौंक कर) ओह! आप हैं। आइये, आइये!

[मनमोहन उनके पास ही बैठ जाता है।]

मनमोहन—(जेब से परमिट निकाल कर सेठजी की ओर बढ़ाते हुये) यह लीजिये सेठजी, परमिट!

सेठजी—(परमिट देखकर जेब में रखते हुये) बहुत बहुत धन्यवाद मनमोहनजी!

मनमोहन—कोरे धन्यवाद से काम नहीं चलेगा सेठजी ! परमिट प्राप्त करने के लिए मुझे मित्रा साहब को प्रसन्न करना पड़ा है।

सेठजी—मैं जानता हूँ। बिना इसके तो काम ही नहीं चलता आज कल। कितना व्यय हुआ है तुम्हारा ?

मनमोहन—वैसे तो २५ रुपये गांठ की खुली दर है पर मैंने तो कुल पाँच हजार में ही काम निकाल लिया है।

सेठजी—पाँच हजार ! यह लीजिए।

[सेठजी जेब से सौ सौ रुपये के पचास नोट निकाल कर उसे देते हैं। वह उन्हें लेकर अपनी जेब में रख लेता है।]

सेठजी—मित्रा साहब को किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहनी चाहिये।

मनमोहन—शिकायत कैसी ? वे तो बहुत प्रसन्न हैं आप पर। कपड़ा भी बहुत पसन्द आया है उन्हें। हां मुझे अवश्य शिकायत है।

सेठजी—(आश्चर्य से) क्या ?

मनमोहन—यही कि आपको परमिट भी मिल गया फिर भी मुझे न तो कुछ खिलाया और न पिलाया !

सेठजी—(हँसते हुये) खाने को तो यहां सब कुछ है, पर पीने को जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं। चलिये होटल चलें जहां आपको ठंडी चाय मिल सके।

[दोनों हँसते हुये बाहर जाने के लिये उठते हैं। अन्दर से रमेश आता है।]

रमेश—पिताजी..... !

[सेठजी मुड़कर उसकी ओर देखते हैं।]

रमेश—मुझे आप से कुछ आवश्यक बातें करना है !

सेठजी—लौट कर सुनूँगा रमेश ! अभी तो मैं काम से जा रहा हूँ !

[दोनों बाहर चले जाते हैं। रमेश उदासभाव से कमरे में टहलता रहता है फिर जाकर पियानो बजाने लगता है। वह गाता है। उसके स्वर में वेदना मिश्रित करुणा है।]

टूट गया जीवन इकतारा !
टूट गया, टूट गया !!

चुन चुन तिनके नीड़ बनाया;
आशा - पंछी को अपनाया;
बिजली गिरी, और पल भर में—

नीड़ हमारा टूट गया!
जीवन इकतारा टूट गया !!
टूट गया, टूट गया !!

प्यार-सिंधु में नौका छोड़ी;
गह पतवार धैर्य्य के, मोड़ी;
आया वह तूफान कि मुझसे—

दूर किनारा छूट गया !
जीवन-इकतारा टूट गया !!
टूट गया, टूट गया !!

दो दिन भी हँस खेल न पाये;
रोने के दिन दौड़े आये;
कैसे जियें जबकि जीवन का—

हाय सहारा टूट गया !
जीवन इकतारा टूट गया !!
टूट गया, टूट गया !!

[रमेश गाते गाते अपना सर पियानो पर टिका देता है। अन्दर से वजीरचन्द आता है। वह धीरे धीरे रमेश के पास जाता है और उसके कन्धे पर हाथ रखता है।]

रमेश—(सर उठाकर अवरुद्ध स्वर में) चाचा जी !

वजीरचन्द—मैं सब जानता हूँ बेटा ! शीला ने मुझे सब कुछ बता दिया है। भगवान पर भरोसा रक्खो वह सब की सुनता है !

रमेश—भगवान पर मुझे विश्वास नहीं चाचाजी, और कोई ऐसा दिखाई नहीं देता जिस पर भरोसा करूँ, विश्वास करूँ !

वजीरचन्द—अपने पर विश्वास करो बेटा ! निराश होने से काम

नहीं चलेगा ! कुछ यत्न करो ! भगवान तुम्हारी सहायता करेगा ।

[वजीरचन्द धीरे धीरे बाहर चला जाता है । अन्दर से नीला गंभीर मुद्रा में आती है ।]

नीला—(रमेश के पास जाकर) दादा !

रमेश—(नीला की ओर अश्रुभरी दृष्टि से देखते हुए) नीला !

नीला—दादा ! अगर आप ही इस प्रकार निराश होंगे तो मै क्या करूँगी, मेरा क्या होगा ?

रमेश—(करुण स्वर में) नीला !

नीला—आपने ही तो कहा था कि हम पिताजी की आज्ञा का भरसक विरोध करेंगे !

रमेश—(खड़े होकर दृढ़ स्वर में) हाँ नीला ! हम पिताजी की आज्ञा का भरसक विरोध करेंगे ।

[बाहर से सेठ जी का प्रवेश ।]

सेठ जी— कौन करेगा मेरी आज्ञा का विरोध ?

नीला—हम दोनों !

[सेठ जी क्रुद्ध दृष्टि से कभी नीला और कभी रमेश की ओर देखते हैं ।]

रमेश—हाँ पिताजी, हम दोनों !

सेठ जी—(तीव्र स्वर में) रमेश ! तुम अपने पिता से बात कर रहे हो !

रमेश—जानता हूं पिताजी ! और इसीलिये आपके बच्चों के अधिकार से हम अपने हित के लिये मरते दम तक लड़ेंगे ।

सेठ जी—क्या तुम्हारा हित इसी में है कि तुम मेरे शत्रु को इस घर में लाओ, अपने सामने उससे मुझे अपमानित कराओ ?

रमेश—आप भूलते हैं पिताजी ! अजीत आपका शत्रु नहीं मित्र है ! जिन्हें आप अपना सच्चा हितैषी समझते हैं वही आपके पक्के शत्रु हैं—आस्तीन के साँप की तरह !

सेठ जी—बकते हो तुम ! क्या मैं इतना मूर्ख हूँ कि अपना भला बुरा नहीं जानता ! अजीत मेरा शत्रु है—पक्का शत्रु ।

रमेश—इसीलिये न कि वह आपके काले कारनामों में आपका साथ नहीं देता, आपको प्रसन्न करने के लिये हाँ में हाँ नहीं मिलाता, आपकी काली कमाई के पैसों पर अपनी आत्मा नहीं बेचता !

सेठ जी—(चीखकर) चुप रहो रमेश ! तुम सबने मिलकर मुझे पागल कर दिया है।

नीला—पागल हमने नहीं आपके झूठे अभिमान ने कर दिया है आपको—अभिमान जिसके कारण आप मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते !

सेठ जी—तुम भी उस बदमाश के लिये मेरा विरोध करोगी ? क्या इसीलिए पाला था मैंने तुम्हें ? कौन है वह तुम्हारा जिसके लिये... !

नीला—(बीच में ही) मैं उन्हें प्यार करती हूँ। वे मेरे देवता हैं।

[सेठ जी दोनों हाथों से अपना सिर थाम लेते हैं। कुछ देर तक वे उसी दशा में खड़े रहते हैं।]

सेठ जी—(धीमे स्वर में) नीला !

नीला—हाँ पिताजी ! मैं उन्हें प्यार करती हूँ और उस प्यार को जीवित रखने के लिये मैं बड़े से बड़ा त्याग करने में सङ्कोच न करूँगी !

सेठ जी—(रमेश की ओर मुड़कर चीखते हुए) और तुम शायद उस छोकरी को प्यार करते हो ?

रमेश—(गम्भीर स्वर में) जी पिताजी ! मैं उसे प्यार करता हूँ।

सेठ जी—(व्यग्रता से कमरे में टहलते हुए) अब समझा ! उन दोनों ने जादू कर दिया है तुम लोगों पर ! जानते हो क्यों ? यह धन यह सम्पत्ति हथियाने के लिये ! मैं खूब जानता हूँ उन्हें ! क्या चाल चली है ?

नीला—आप उन्हें भला बुरा न कहें पिताजी ! हम बलि के बकरे की तरह चुपचाप रहकर अपने प्यार की बलि न होने देंगे ! हम संघर्ष करेंगे, चाहे वह आपसे—अपने पिता से ही क्यों न हो। (रमेश की ओर मुड़कर) चलो दादा, चलें कान्ता के यहाँ !

[रमेश और नीला दोनों बाहर चले जाते हैं। सेठ जी दोनों

हाथों से सर थामकर कोच पर बैठ जाते हैं। अन्दर से शीला आती है।]

शीला—(सेठ जी के समीप जाते हुए) क्या बात है ताऊ जी ! आप स्वस्थ तो हैं ?

सेठ जी—ठीक हूँ बेटी !

[सेठ जी उठकर अन्दर चले जाते हैं। शीला विस्मय से उनकी ओर देखती रहती है। बाहर से सुरेश का प्रवेश। उसके पैर डगमगा रहे हैं।]

सुरेश—आह ! शीला, मेरी शीला !

शीला—(चौंक कर) सुरेश बाबू ! इस प्रकार के सम्बोधन से मुझे पुकारने का आप को कोई अधिकार नहीं।

सुरेश—(खिलखिलाकर हँसता हुआ आगे बढ़कर) अधिकार·····! हा···हा···हा····· ! इस····· इस अधिकार को मैं लेकर रहूँगा·····लेकर रहूँगा।

शीला—(पीछे हटकर) दूर रहिये मुझसे ! आप के मुँह से मदिरा की दुर्गन्ध आ रही है।

सुरेश—(हँसकर) दुर्गन्ध नहीं, सुगन्ध कहो शीला सुगन्ध ! आज मैं मदिरा·····मादक मदिरा पीकर आया हूँ।

शीला—मुझे ज्ञात न था आप इतने पतित हैं।

सुरेश—पतित ? (हँसता है) पतन की इसमें क्या बात है ? देवता भी इसका सेवन करते थे। यह तो अमृत है अमृत। पियोगी ?

शीला—(घृणा से) अपना अमृत अपने ही पास रखिये। मेरे लिए तो वह विष से भी अधिक तीखा है।

सुरेश—(आगे बढ़कर) पागल हो ! यह अमृत नया जीवन, नयी स्फूर्ति और नया साहस देता है। मैंने आज मदिरा पी है। जानती हो क्यों·····?

शीला—(पीछे हटती हुई) मैं कुछ जानना नहीं चाहती। मैं·····!

सुरेश—(बीच में ही) मैंने मदिरा पी है इसलिए कि तुम्हारे मान के आगे मेरे साहस के कदम डगमगा न जायें।

शीला—पहले अपने कदम सँभालिये फिर साहस की बात कीजियेगा।

सुरेश—(भयंकर हँसी हँसकर) मेरे कदम उठ चुके हैं शीला! इन्होंने आगे बढ़ना ही सीखा है, पीछे हटना नहीं। आज मैं तुम्हें अपना ···आना बना कर ही रहूँगा। लाओ·····लाओ वह अँगूठी वाला हाथ मुझे दो। मैं उसे चूमना चाहता हूँ।

शीला—(क्रोध से अँगूठी उतार कर फेंकती हुई) यह लीजिये अपनी अँगूठी। जिस क्षण मे पहनी है, उँगली में अँगार सी दहकती रही है।

सुरेश—(अँगूठी उठाकर जेब में रखते हुये तीव्र स्वर मे) तुम मेरा अपमान कर रही हो। यह न भूलो कि तुम मेरी आश्रिता हो, मेरे टुकड़ों पर पल रही हो।

शीला—मानती हूँ। पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं उन टुकड़ों पर अपना शरीर बेच दूँ, अपनी लाज लुटा दूँ।

सुरेश—लाज·····! हा···हा···हा···हा···! लाज! घाट घाट का पानी पीने वाली की भी लाज होती है यह आज ही जाना!

शीला—(तीव्र स्वर में) सुरेश बाबू! यदि अपनी लाज ही लुटानी होती तो अपना देश छोड़कर यहाँ ठोकरें न खाती! जीवन से अधिक हमें लाज प्यारी है।

सुरेश—होगी। रही ठोकरों की बात सो तुम अपने मान के कारण खा रही हो। मैं·····मैं तो तुम्हें अपने हृदय की रानी बनाना चाहता हूँ।

शीला—(व्यंग से) कितने दिन के लिए? सुरेश बाबू, आप मुझे धोखा नहीं दे सकते। नारी को वासना-पूर्ति का साधन मानने वाले पुरुषों की वृत्ति से मैं भली प्रकार परिचित हूँ।

सुरेश—किसी की वासना का लक्ष्य बन चुकी हो क्या?

शीला—(चीखकर) सुरेश बाबू! आपको ऐसी बातें करते लज्जा नहीं आती! मैं आपकी बहन के समान हूँ।

सुरेश—बहन! (हँसता है) बहन·····! क्या मैं तुम्हें अपनी

बहन बनाने के लिए लाया था ? यह गुलाब सा खिला रूप, यह चाँद सा मुखड़ा, यह गदराया यौवन क्या बहन बनने के लिये है ?

[सुरेश पागलों के समान हँसता है ।]

शीला—होश में आइये सुरेश बाबू !

सुरेश—मैं होश में हूँ ! (आगे बढ़कर) मैं तुम्हें बहन बनाने के लिए नहीं, प्राणेश्वरी बनाने के लिये लाया था, हृदयेश्वरी बनाने के लिए लाया था ।

शीला—(पीछे हटकर) या अपनी भूख मिटाने के लिए, अपनी वासना-पूर्ति के लिये ? यदि आश्रय का मूल्य आप इस रूप में चाहते हैं तो·····तो मैं आज ही·····अभी यहाँ से चली जाऊँगी !

सुरेश—मेरा मूल्य चुकाकर तुम जहाँ चाहो जा सकती हो । मेरे लिए लड़कियों का अभाव नहीं । तुम नहीं और सही, और नहीं और सही ! पैसे में बहुत शक्ति है शीला !

शीला—पैसे से आप शरीर की प्यास बुझा सकते हैं पर आत्मा की नहीं ।

सुरेश—मैं वेदान्त की बातें सुनने का अभ्यस्त नहीं ! आओ, शीघ्रता करो ! मेरी भुजायें तुम्हें आलिंगन में बाँधने के लिए उतावली हो रही हैं, अधर सुधापान के लिए व्याकुल हो रहे हैं । आओ आगे बढ़ो, नशा उखड़ा जा रहा है !

शीला—(पीछे हटकर) हट जाइये मेरे सामने से ! मुझे जाने दीजिये !

सुरेश—बिना मूल्य दिये तुम कहीं नहीं जा सकतीं ! (आगे बढ़ता हुआ) आज मैं अपना मूल्य लेकर ही रहूँगा । आज····· आज·····तुम्हें मेरे हाथों से कोई नहीं बचा सकता·····कोई नहीं बचा सकता ! और तो और आज परमात्मा भी नहीं बचा सकता ! (पकड़ने की चेष्टा करता है ।)

शीला—(बचकर) परमात्मा तो बहुत बड़ी शक्ति है । अभी तो अपनी रक्षा मैं स्वयं कर सकती हूँ । दूर रहिये, नहीं तो·····नहीं तो

इससे पूर्व कि आपके अपावन स्पर्श से मेरा शरीर कलुषित हो मैं·····
मैं·····।

[शीला आगे नहीं कह पाती। सुरेश आगे बढ़कर उसे पकड़ने की चेष्टा करता है। शीला फूलदान उठाकर सुरेश के सर पर मारती है। सुरेश लड़खड़ा कर भूमि पर गिर जाता है। शीला क्रुद्ध दृष्टि से उसे देखती रहती है। आवेश के कारण उसका शरीर काँपने लगता है। बाहर से मधुप आता है। शीला मधुप को देखकर फूट-फूटकर रोने लगती है।]

मधुप—(मृदु स्वर में) शीला! मैं सब जानता हूँ! तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं। मैंने इन्हें समझाया भी था पर ये न माने। अपने कर्मों का इन्हें उचित ही फल मिला है।

[मधुप सुरेश को उठाकर कंधेपर डाल लेता है। उसके सर से रक्त निकल कर उसके वस्त्रों को लाल कर रहा है।]

मधुप—तुमने मेरे विश्वास की लाज रख ली शीला, इसके लिये मैं तुम्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ?

शीला—(मंद स्वर में) आपके विश्वास ने मुझे जो साहस और शक्ति दी उसके लिए मैं आपकी आभारी हूँ!

मधुप—यह तुम्हारी महानता है शीला! जब तक भारत में तुम जैसी युवतियाँ रहेंगी, तब तक हमारा पूर्व गौरव भी सुरक्षित रहेगा। तुम अन्दर जाओ। मैं इन्हें अस्पताल लिये जा रहा हूँ।

[शीला धीरे धीरे अन्दर की ओर जाती है। मधुप सुरेश को उठाकर बाहर ले जाता है। शीला जाते जाते फिर रुक जाती है। फूलदान के टुकड़े उठाकर खिड़की के बाहर फेंकती है। फ़र्श पर लगे रक्त को अपने अंचल से पोंछती है। बाहर से रमेश, नीला और कान्ता का प्रवेश।]

नीला—देखो शीला! मैं कान्ता को पकड़ ही लाई।

शीला—(हँसने की चेष्टा करती हुई) अच्छा! आओ बहन!

कान्ता—(शीला के वस्त्रों पर रक्त के चिन्ह देखकर) यह रक्त कहाँ से आया?

शीला—मुरेश भैय्या फूलदान उछाल कर पकड़ने की चेष्टा कर रहे थे। फूलदान उनके सर पर लग गया।

नीला—(घबराकर) कहाँ हैं वे ? चोट अधिक तो नहीं आई ?

शीला—नहीं ! मधुप पट्टी बँधवाने ले गये हैं ! मैं अभी आई बहन ! जरा कपड़े बदल लूँ।

[शीला अन्दर चली जाती है। रमेश और कान्ता को वहीं छोड़कर नीला भी उसी के पीछे चली जाती है।]

रमेश—(कान्ता के पास आते हुये) पिता जी की बातों का तुमने बुरा तो नहीं माना कान्ता ?

कान्ता—(मुँह घुमाकर दूर जाते हुये रूखे स्वर में) ऐसी ऐसी बातों का यदि हम बुरा मानें रमेश बाबू तो जीना दूभर हो जाये।

रमेश—(कातर स्वर में आगे बढ़ते हुये) कान्ता !

कान्ता—(रमेश की ओर घूमकर) हाँ रमेश बाबू, जीना दूभर हो जाये। परमात्मा भी कितना दयालु है जो उसने हम निर्धनों को मान अपमान की भावना ही नहीं दी।

रमेश—कान्ता ! आज तुम्हें हो क्या गया है ?

कान्ता—हो तो कुछ आपको गया है रमेश बाबू ! मैं तो बिलकुल ठीक हूँ। अन्तर इतना है कि पहले सो रही थी, अब जाग गई हूँ।

रमेश—इस तरह शब्द-शर छोड़ने की अपेक्षा तो तुम मेरे हृदय को एक बार में ही चीर डालो ! तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ कि उन बातों को लेकर हम लोग पिताजी से कितना लड़ चुके हैं, कितना विरोध कर चुके हैं उनका !

कान्ता—मुझे धोखा देने की चेष्टा कर रहे हैं आप.....? मैं अब आपको सच्चे रूप में देख चुकी हूँ—! आप.....

[कान्ता की सिसकियाँ बँध जाती हैं। रमेश धीरे धीरे कोच की ओर बढ़ता है और कटे वृक्ष की तरह कोच पर गिर पड़ता है। अन्दर से दौड़ती हुई नीला आती है।]

नीला—क्या कह दिया है तुमने दादा से कान्ता ? वे तो वैसे ही बहुत दुखी हैं। क्यों जलाती हो उन्हें ?

कान्ता—(तीखे स्वर में) तुम्हारे दादा तो सब कुछ हैं और मेरे दादा जैसे कुछ भी नहीं। जितना तुम अपने दादा को चाहती हो उतना ही मैं भी अपने दादा को चाहती हूँ।

नीला—तुमसे अधिक तुम्हारे दादा को मैं चाहती हूँ कान्ता!

कान्ता—झूठ है यह, छल है, धोखा है। यदि ऐसा होता तो इस तरह उनके हृदय पर चोट न की जाती।

नीला—उनके अपमान से मेरे हृदय पर जो चोट पहुंची है कान्ता उसे भी समझने की चेष्टा करो—एक नारी होने के नाते!

कान्ता—निर्धनता और लक्ष्मी का कोई नाता नहीं नीला! उस घटना से दादा का हृदय टूट गया है, वे पागल हो रहे हैं; उन्हें अपने पर भी विश्वास नहीं रहा है—मुझे भी शङ्का की दृष्टि से देखते हैं। जानना चाहती हो क्यों?

नीला—कान्ता!

कान्ता—उन्होंने तुम्हारी भावना का, तुम्हारे प्यार का विश्वास किया नीला। अब वह विश्वास कच्चे शीशे की तरह चूर चूर हो गया है। तुमने उन्हें नारी जाति का विद्रोही बना दिया—तुमने, हाँ नीला तुमने!

रमेश—(आँखें उठाकर चीखते हुए) बस करो कान्ता! बस करो!

कान्ता—क्यों? अभी और सुनो! जानती हो नीला उन्होंने मुझसे क्या कहा था घर जाकर? कहने लगे—मैंने तुम्हें पहले ही समझाया था कान्ता कि झोपड़ी में रहकर महलों के सपने न देखो, पर तुम न मानीं, न मानीं। आज देख लिया तुमने कि झोपड़ी झोपड़ी है और महल महल! दोनों में कोई मेल नहीं, कोई नाता नहीं! लेकिन .....लेकिन मैं तुम्हें दोष क्यों दूँ कान्ता जब स्वयं मैं ही वह भूल कर बैठा हूँ!

नीला—कान्ता.....!

कान्ता—और अब मुझे भी विश्वास हो गया है कि मेरे साथ जो प्रेम-प्रपञ्च किया जा रहा था, वह छल था, झूठ था!

रमेश—(खड़े होकर चीखते हुए) कान्ता !

कान्ता—हाँ ! जब आपके पिताजी दादा को धन से न खरीद सके तो आप लोगों ने प्रेम का ढोंग रचाया ! हम गरीबों की भावना से खेलने का क्या अधिकार था आपको ? हाँ

[कान्ता सिसकने लगती है। रमेश की भी सिसकियाँ बँध जाती नीला की आँखें भी तरल हैं।]

रमेश—(सिसकते हुए) इस—इस समय मैं कुछ नहीं कहूँगा, किन्तु एक दिन—तुम्हें—तुम्हें अपनी भूल ज्ञात होगी और तब..... और तब.....!

[रमेश तीव्रता से अन्दर चला जाता है।]

कान्ता—(रमेश के पीछे दौड़ती हुई) और तब—और तब क्या होगा रमेश बाबू ! मुझे बताते जाओ—मुझे बताते जाओ।

[कान्ता भी रमेश के पीछे पीछे अन्दर चली जाती है। नीला उदासी से कमरे में टहलती हुई गीत गाती है।]

नीला— तुम ही बताओ प्रियतम तुम ही बताओ !

काली घटायें छाने लगी हैं;
मस्त हवायें आने लगी हैं;
कैसे करेंगी यह बरसातें—

तुम ही बताओ प्रियतम तुम ही बताओ !!

[नेपथ्य से अजीत का स्वर]

पपिहा शोर मचाने लगा है;
दिल में आग लगाने लगा है;
कैसे करेंगी विरहा की रातें—

तुम ही बताओ प्रेयसि तुम ही बताओ !!

[स्वर थम जाता है। नीला फिर गाती है।]

निष्ठुर मुझको छोड़ गये क्यों ?
मुझसे मुखड़ा मोड़ गये क्यों ?
कैसे भुलाऊँ बीती बातें—

तुम ही बताओ प्रियतम तुम ही बताओ !!

[नेपथ्य से अजीत का स्वर]

हँस न सके हम, मिल न सके हम;
इस उपवन में खिल न सके हम;
क्यों लूटी खुशियों की बरातें—

तुम ही बताओ प्रेयसि तुम ही बताओ !!

[नीला अजीत के स्वर से स्वर मिलाकर गाती है ।]

तुम ही बताओ प्रियतम तुम ही बताओ !!

[नीला गाते गाते कोच पर बैठकर रोने लगती है। उसकी सिसकियों का स्वर कमरे में गूँजता रहता है। बाहर से सेठ जी आते हैं ।]

सेठ जी—(करुण स्वर में) नीला बेटी !

[नीला और फूट फूट कर रोने लगती है ।]

सेठ जी—(नीला के पास बैठकर उसके सर पर हाथ फेरते हुए) तुम्हारी आखों में आँसू क्यों बेटी ? उठो, हाथ मुँह धोओ ।

[नीला उसी प्रकार बैठी रहती है । अन्दर से रमेश कान्ता और शीला आते हैं । कान्ता को देखकर सेठ जी क्रोधित हो उठते हैं ।]

सेठ जी—(उठकर रमेश से) फिर ले आये तुम इस छोकरी को ?

रमेश—(तीव्र स्वर में) बहुत हो चुका पिताजी ! आप मेरे पिता हैं इसका यह अर्थ नहीं कि आप मेरी भावी पत्नी का अपमान करें

सेठ जी—भावी पत्नी (हंसकर) भावी पत्नी ! देखता हूँ अभी तुम्हारी भावी पत्नी को।

[वे आगे बढ़कर कान्ता का हाथ पकड़ने की चेष्टा करते हैं ! कान्ता पीछे हट जाती है। रमेश कान्ता और सेठ जी के बीच में आ जाता है। नीला उठकर कान्ता के पास खड़ी हो जाती है।]

रमेश—पिताजी ! आप कान्ता को यहां से निकाल नहीं सकते ! हम जहाँ रहेंगे, साथ रहेंगे !

सेठजी—(क्रुद्ध स्वर में) अच्छा यह बात है ! तो जाओ तुम भी अपना काला मुँह मुझ से दूर ले जाओ ।

कान्ता—(आगे बढ़ कर) सेठजी ! आप मेरे कारण अपने पुत्र को क्यों भला बुरा कहते हैं ? मैं स्वयं जारही हूँ !

[कान्ता जाने का उपक्रम करती है।]

रमेश—(कान्ता का हाथ पकड़ कर) रुको कान्ता ! हम दोनों यहाँ से साथ ही चलेंगे। उस घर में रहना व्यर्थ है जहाँ धन से मनुष्यता का मूल्य आँका जाता हो। चलो ! हम यहां से जितनी जल्दी चल दें उतना ही अच्छा है।

[दोनों द्वार की ओर बढ़ते हैं।]

सेठजी— (आगे बढ़ कर गरजते हुये) जाने से पहले यह भी सुनते जाओ रमेश कि इस घर के द्वार अब तुम्हारे लिये सदा के लिए बन्द हैं। आज से मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं—कोई नाता नहीं। अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकार से भी मैं तुम्हें वंचित कर दूँगा। समझे ?

रमेश—तो क्या आप समझते हैं कि मैं आपके धन का भूखा हूँ। आपकी काली कमाई से एक कानी कौड़ी भी मैं नहीं लेना चाहता, आप के उस धन से जो आपने निर्धनों तथा बेबसों का रक्त चूस चूस कर एकत्र किया है मैं एक पैसा भी नहीं चाहता !

[रमेश और कान्ता जाने को उद्यत होते हैं। नीला दौड़ कर रमेश का हाथ पकड़ लेती है।]

नीला—दादा ! मुझे इस नर्क में छोड़ कर आप इस प्रकार

नहीं जा सकते। मैं भी चलती हूँ ।

सेठजी—जाओ, तुम भी जाओ ! दूर हो जाओ मेरी आँखों से। समझ लूँगा कि मेरे एक ही पुत्र था।

[बाहर से सुरेश मधुप और वजीरचन्द आते हैं। सुरेश के सर पर पट्टी बँधी है। उसकी मुद्रा गंभीर है।

सुरेश—क्या बात है पिताजी ?

सेठजी—रमेश उस छोकरी के पीछे मुझे छोड़ कर जा रहा है सुरेश ! नीला—यह नीला भी जारही है अपने अजीत के लिये ! अजीत ! मेरा शत्रु ! कोई बात नहीं सुरेश ! आज से मेरी सारी सम्पत्ति के तुम्हीं उत्तराधिकारी हो—केवल तुम, तुम।

सुरेश—(गंभीर स्वर में) पिताजी ! यदि दादा और नीला कान्ता और अजीत से प्यार करते हैं तो इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

सेठजी—मुझे क्या आपत्ति है ? उस कंगाल को मैं अपनी लड़की दूँगा ? उसकी बहन इस घर में लाऊँगा ? क्या तू भी पागल होगया है सुरेश ?

सुरेश—और आपकी जिद का, झूठे अभिमान का क्या फल होगा यह भी सोचा है आपने ? दादा और नीला दोनों चले जायेंगे। यह घर सूना होजायेगा—यह घर—जहां हम साथ साथ खेले, साथ साथ हँसे और साथ साथ रोये ! नहीं, यदि दादा और नीला यहाँ नहीं रहेंगे तो मैं भी नहीं रहूँगा ?

सेठजी—तूने ऐसी बातें कब से सीखीं सुरेश ?

सुरेश—(शीला की ओर तिरछी दृष्टि से देखकर) आज से ही पिता जी ! मैं मानता हूँ कि आज से पहले न तो मैं भला पुत्र था और न भाई। पर आज·····आज मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं चाहे अच्छा मनुष्य न बन सकूँ पर·····पर दादा के चरणों में बैठकर एक····· एक अच्छा सेवक बनने की चेष्टा अवश्य करूँगा·····अवश्य करूँगा। मुझे आप का यह धन-वैभव नहीं चाहिये—नहीं चाहिये। (रमेश के चरणों पर झुककर रुद्ध स्वर में) मुझे·····मुझे इन चरणों की सेवा से वंचित न कीजियेगा दादा !

कि मेरे पापों का फल तुम्हें भुगतना पड़े। तुमने जो कुछ किया, मेरी आज्ञा से!

मोहनलाल—जी सेठ जी.....

सेठ जी—हाँ मोहनलाल! तुमने जो कुछ किया मेरे आदेश से। सच्चा अपराधी तो मैं हूँ। जाओ, तुम घर जाओ! इससे पहले कि पुलिस आकर तुम्हें भी पकड़ ले, तुम यहाँ से दूर—दूर चले जाओ!

[मोहनलाल तीव्र गति से बाहर चला जाता है।]

नीला—(आगे बढ़कर करुण स्वर में) पिता जी!

सेठ जी— नहीं—नहीं! मैं यह सहन नहीं कर सकता कि पुलिस यहाँ आये! पुलिस आज तक न इस घर में आई है और न कभी आयेगी। मैं स्वय जाकर अपने अपराध स्वीकार कर लूँगा।

रमेश—पिता जी ...!

सेठ जी—हाँ बेटा रमेश! मैं अपने सब अपराध स्वीकार कर लूँगा! मेरे और मनमोहन जैसे पापियों को दंड मिलना ही चाहिए!

रमेश—मनमोहन.....?

सेठ जी—हाँ! जिसे सब काँग्रेस का भक्त समझते हैं पर जो काँग्रेस के नाम पर चन्दा खा जाता है, घूस लेता और दिलाता है, बापू के पवित्र नाम पर कलंक लगाता है!

रमेश—आप ठीक कहते हैं पिता जी! ऐसे ही लोग काँग्रेस को बदनाम करते हैं, भ्रष्टाचार फैलाते हैं और अपनी जनप्रिय सरकार की आलोचना करवाते हैं।

सेठ जी—(करुण स्वर में) बेटा रमेश! बेटी नीला! मैं न तो अच्छा मनुष्य हूँ और न अच्छा पिता! जेल में प्रयत्न करूँगा कि मैं तुम लोगों का पिता कहलाने योग्य बन सकूँ!

नीला—(गीले स्वर में) पिता जी!

सेठ जी—हाँ बेटी! यदि कभी इस योग्य बन सका तो लौटकर आऊँगा नहीं तो जेल से छूटकर अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये काशी चला जाऊँगा। (कान्ता की ओर मुड़कर सिसकते हुये)

रखना !

कान्ता—(रुँधे स्वर में) सेठ जी·····।

सेठ जी—सेठ जी नहीं बेटी—पिता जी—केवल एक बार मुझे पिता जी कह कर पुकार लो !

कान्ता—(रोती हुई) पिता जी·····!

सेठ जी—अब·····अब मैं शान्ति से रह सकूँगा जेल में·····। पर नहीं—नहीं। अजीत कहाँ है—मुझे उसके हाथों में भी नीला का हाथ सौंपना है। कोई बताओ मुझे—कहाँ है अजीत—कहाँ है अजीत ?

[कुछ श्रमिक अजीत को घायल अवस्था में उठाये हुये लाते हैं। वह रक्त से सना है। अन्दर से राम् आता है।]

एक श्रमिक—अजीत तो नहीं, अजीत की लाश हम ले आये हैं ताकि उसे देखकर आप हँस सकें—खुशियाँ मना सकें।

[अजीत को कोचपर लिटाकर श्रमिक चले जाते हैं। कान्ता 'दादा' 'दादा' कहती हुई अजीत का सर अपनी गोद में रख लेती है। नीला 'अजीत' 'अजीत' कहती हुई उसके पैरों से चिपट जाती है।]

रमेश—(पागलों की तरह अजीत पर झुककर) अजीत ! अजीत ! काश ! तुम एक बार बोल सकते ! काश ! तुम एक बार बता सकते कि कौन है वह हत्यारा जिसने तुम्हारी यह दशा की, कान्ता का भाई छीना और मेरी बहन का सौहाग लूटा। काश ! काश ! तुम एक बार बोल सकते अजीत, बस एक बार !

सेठ जी—(सिसकते हुये) मैं हूँ वह हत्यारा रमेश ! मैंने ही अजीत की यह दशा की, मैंने ही कान्ता का भाई छीना, मैंने ही अपनी बेटी का सौभाग्य लूटा। मार डालो मुझे रमेश, मार डालो।

रमेश—(क्रोध से सेठ जी का गला दबाते हुये) तो आप हैं वह हत्यारे ! आप ?

सेठ जी—हाँ मैं ही हूँ वह पापी ! मार डालो मुझे ! मैं जीना नहीं चाहता—मार डालो मुझे, मार डालो। मेरी ही आज्ञा से अजीत की यह दशा हुई है।

रमेश—(उसी स्वर में) जब अजीत की यह दशा करते हुये आपने

यह न सोचा कि कान्ता की क्या दशा होगी, जब ऐसी कठोर आज्ञा देते समय आपने यह न सोचा था कि आपकी अपनी बेटी नीला की क्या दशा होगी तब मैं—मैं क्यों कुछ सोचूँ। (सेठ जी के गले से हाथ हटाकर उन्हें फैलाकर देखते हुये) काँपना मत—ऐ मेरे हाथो काँपना मत ! यदि—यदि आज तुम ज़रा भी काँपे तो मैं तुम्हें भी काटकर फेंक दूँगा—काटकर फेंक दूँगा। (दोनों हाथों से गला दबाने की चेष्टा करता है। नीला दौड़कर रमेश को पकड़ लेती है।)

नीला—दादा ! दादा !!

रमेश—हट जाओ मेरे मार्ग से नीला ! मैं पागल हो गया हूँ।

[रमेश फिर गला दबाता है। उसी समय अजीत धीरे धीरे आँखें खोलता है।]

अजीत—(मन्द स्वर में) नीला ! नीला !!

[नीला के अश्रु भरे नयनों में हास खेल जाता है। वह दौड़कर अजीत के पास जाती है। रमेश, सुरेश, शीला और वजीरचन्द भी उसके पास आ जाते हैं।]

सेठ जी—(अजीत के पास जाकर) अजीत ! अजीत !! बेटा अजीत !

अजीत—(रुक रुककर) सेठ जी······! मैं हड़ताल—हड़ताल······नहीं······होने दूँगा······चाहे प्राण·········प्राण ही क्यों न चले जायँ।

सेठ जी—हड़ताल नहीं होगी अजीत ! हड़ताल नहीं होगी। तुम जियो—मेरा जीवन लेकर—मेरी आयु लेकर (रमेश से) रमेश, मैं जा रहा हूँ डाक्टर लेने।

[सेठ जी तेजी से बाहर चले जाते हैं।]

अजीत—(मंद स्वर में···) डाक्टर········· डाक्टर अब क्या करेगा······? कान्ता······कान्ता······नीला कहाँ है······?

नीला—(सिसकते हुये)······मैं······यहाँ हूँ अजीत !

अजीत—(सिसकते हुये मंद स्वर में) नीला····· नीला······मेरे पास आओ मेरे पास······! नीला······तुमने सच कहा था······सच

कहा था·····मैं अपने·····को·····अपने को धोखा·····दे रहा था ! नीला···नीला····· मैं · मैं·····तुम्हे····· सदा·····सदा····· प्यार करता था !

नीला—(सिसकते हुये) मैं जानती थी अजीत ! तुम मेरे हो · । तुम्हें मुझसे कोई नहीं छीन सकता··· ···कोई नहीं·····!

[नेपथ्य से करुण संगीत की ध्वनि आती है ।]

अजीत—(स्वर मन्द पड़ जाता है) तुम·····कहाँ हो···नीला···! मुझे·····मुझे कुछ नहीं दिखाई ·····देता ·····! नीला·····कान्ता··· कहाँ·· ···कहाँ·····हो तुम·····रमेश·····रमेश ·····मेरा काम····· मेरा·····काम·····पूरा·····

नीला—हम···हम···तुम्हारे काम को···पूरा···पूरा करेंगे अजीत !

[अजीत का सर एक ओर लुढ़क जाता है । नीला कान्ता और शीला चीख पड़ती हैं । शेष सब अपने आँसू पोंछते हैं । नेपथ्य से करुण संगीत तीव्रतर हो जाता है ।]

नीला—(अजीत के शरीर से लिपट हुये) अजीत, तुम मुझे इस प्रकार छोड़कर नहीं जा सकते—नहीं जा सकते ! मेरे प्यार के साथ विश्वासघात न करने का तुमने मुझे बचन दिया था । अजीत—क्या भूल गये अपना वह बचन · ·? मुझे सौ वर्ष जीवित रहने का शाप ही क्यों दिया था फिर···नहीं···नहीं मुझे सौ वर्ष तक जीवित रखने के लिये तुम्हें सहस्र वर्ष तक जीना पड़ेगा अजीत ·····अ···जी···त···।

[नीला अर्धमूर्छित सी हो जाती है । बजोरचन्द उसे उठाता है । शीला कान्ता को सँभालती है । रमेश शीला का दुपट्टा लेकर अजीत के मृत शरीर को ढक देता है ।]

नीला—(मधुप और सुरेश की ओर मुड़कर) क्या इसी दिन के लिये आपने कामना की थी कि मैं सौ वर्ष तक जियूँ—? उत्तर दीजिये···उत्तर दीजिये मुझे ।

[नीला फूट फूटकर रोती है । बाहर से हाँफते हुये सेठ जी आते हैं । उनके पीछे बेग लिये डाक्टर है । अजीत को उस दशा में देखकर सेठ जी उसकी ओर दौड़ते हैं ।]

सेठ जी—(सिसकते हुये) तुम मेरी प्रतीक्षा भी न कर सके अजीत·····अजीत तुमने मुझे अपने पाप धोने का अवसर भी न दिया ! अजीत बेटा अजीत·····अजीत···।

[सेठ जी मूर्छित सी दशा मे अजीत के ऊपर गिर जाते हैं। सबकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। करुण संगीत तीव्रतर होता जाता है। रमेश फूलदान के पास खड़ा है। उसकी आँखें भीगी है पर वह अपने को संयत रखने की चेष्टा कर रहा है। नीला दौड़ती हुई रमेश के पास आती है।]

नीला—दादा ! क्या आप भी अपना वचन भूल गये। क्या इसी दशा में उन्हें लाने का वचन दिया था ? दादा ! दादा !

[नीला कातर होकर रमेश से लिपट जाती है।]

रमेश—(नीला के आँसू पोछते हुये सिसकते स्वर में) धीरज से काम लो नीला—धीरज से·····! रोओ मत ! न रोओ नीला, न रोओ। तुम्हीं ने···तुम्हीं ने तो कहा था कि स्वतंत्रता·····स्वतंत्रता के लिए बड़े···बड़े बलिदान···बलिदान करने पड़ते हैं। अजीत मर कर अमर हो गया है। उसका बलिदान·····स्वतंत्रता के लिए है···स्वतंत्रता··· ···सच्ची स्वतंत्रता के लिये·····इस·····इस झूठी·····झूठी····· आज़ादी के बाद।

[नेपथ्य से "हँस न सके हम, मिल न सके हम, इस उपवन में खिल न सके हम; मिल न सके हम, मिल न सके हम" गूँजता है। कमरे का प्रकाश धीमा होता जाता है। सिसकियों का स्वर कमरे में गूँजता रहता है। धीरे धीरे यवनिका गिरती है।]

कमला प्रकाशन का

द्वतीय पुष्प

"पुरुष का पाप"

९ एकाँकियों का अभूत पूर्व संग्रह

जिसका

एक एक एकाँकी पढ़ कर आप फड़क उठेंगे

❀

हिन्दी साहित्य में क्राँति मचाने वाला

यह संग्रह अवश्य पढ़ें

❀

इतिहास के गहरे सागर के अमूल्य मोती

❀

भारतीय नारी का अनोखा चित्रण

❀

आज ही आर्डर भेजें

मूल्य केवल १॥)

कमला प्रकाशन,
पो० बा० ३८५
कानपुर

कपूर पब्लिशिंग प्रेस, मैकराबर्टगंज, कानपुर